



ब्रह्मपर्य की महिमा



COLLECTION OF VARIOUS

- > HINDUISM SCRIPTURES
- > HINDU COMICS
- > AYURVEDA
- > MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server



लेखक—
मूर्यवली सिंह

—००००—

रहे जन्म से मृत्यु लों, व्रहचय-व्रतं धारा।
समझो ऐसे वीर को, पौरुष पुरुषाकार॥
वाल व्रहचारी जहाँ, उपर्जे परमोदार॥—
‘शंकर’ होता है वहाँ, सब का सर्व सुधार॥

—शंकर

प्रकाशक—



(सर्वाधिकार स्वाधीन)

दूसरी बार
२०००

दिसम्बर
१९३१

{ मूल्य
एक रुपया

हमारी प्रकाशित उच्चकोटि की पुस्तकें

श्रीमद्भगवद्गीता

छप गई—महात्मागान्धीकी टीका श्रीमद्भगवद्गीता पर—भैंगाइये ?

यह “गीता” अठारहो अध्याय मूल श्लोक तथा भाषा टीका-टिप्पणी-सहित है। प्रस्तावना में ही महात्माजी ने गीता का हृदय खोलकर रख दिया है। साधारण पढ़ा-लिखा मनुष्य भी इस टीक को आसानी से समझ सकता है। टीका नवीन भावों से भरी हुई है। यदि महात्मागान्धी को कोई नई वात न बतानी होती तो सैकड़ों टीकाओं के निकलने के बाद वह गीता पर कलम ही न डालते। मूल्य १) तिरंगे चित्र सहित। डाक खर्च माफ है।

१—श्रीमद्भगवद्गीता—टीकाकार महात्मा गान्धी	१)
२—नारी-धर्म-शिक्षा	१)
३—अरविन्द मन्दिर में	॥)
४—धर्म और जातीयता	१)
५—बनदेवी	॥)
६—ब्रह्मचर्य को महिमा	१)
७—प्रणय	२)
८—कर्त्तव्याधात	२)
९—देश की वात	१॥)
१०—गीता की भूमिका	॥)
११—विधवा की आत्मकथा	२)
१२—मिलन-मन्दिर	२॥)
१३—लाहौर कांग्रेस का इतिहास	॥)

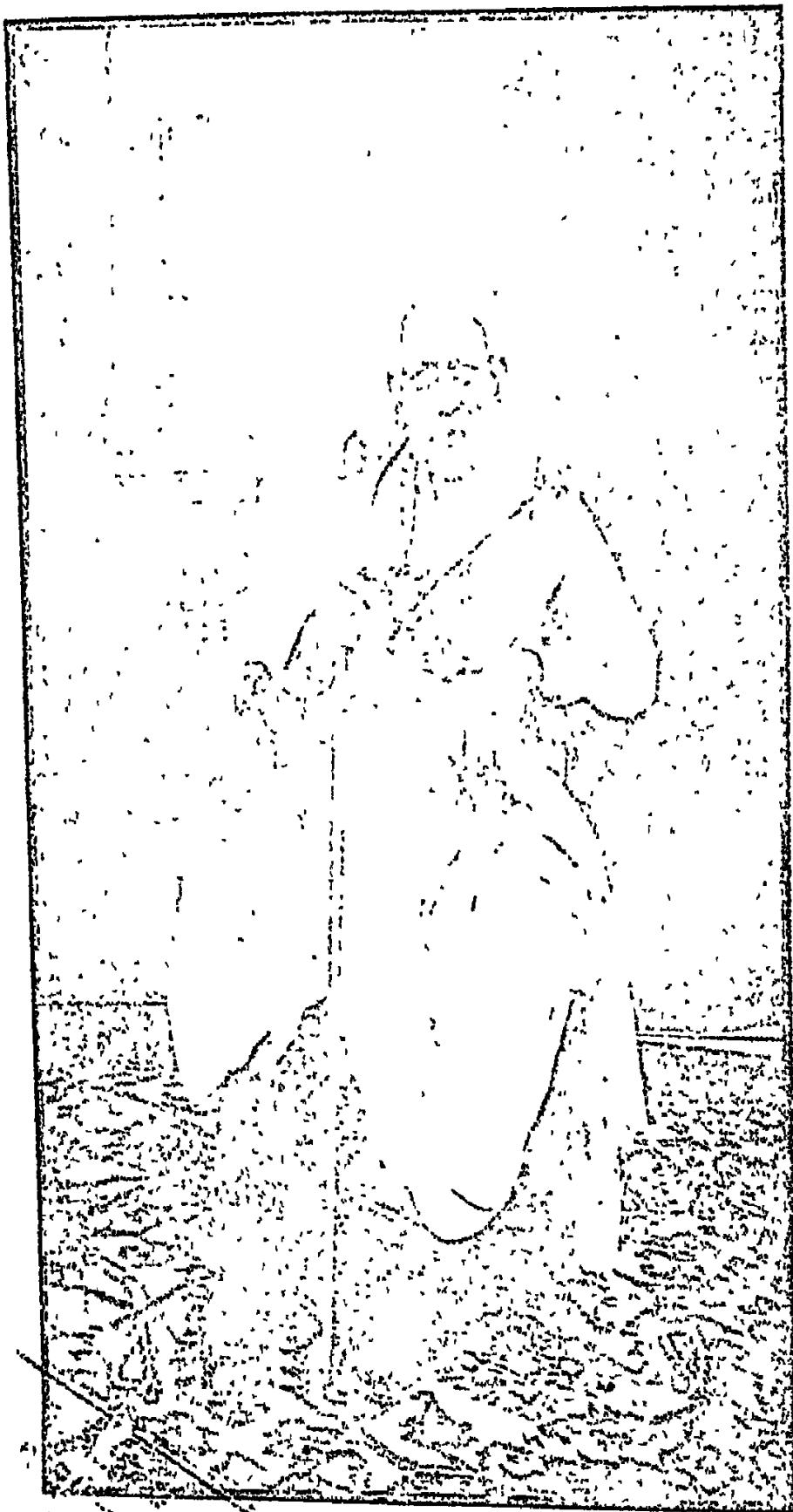
सब तरह की हिन्दी पुस्तकों के लिये यह पता याद रखिये:—

एस० बी० सिंह एण्ड कॉ०

पुस्तक-प्रकाशक तथा विक्रेता, बनारस सिटी।

सुद्रक—बजरंगबली गुप्त “विशारद”

श्री सीताराम प्रेस, बुलानाला, काशी।



सं० १९२५
रामरत्नदास जी के डिया

(स्वर्गीय) श्रीयुत रायसाहब

{ मृत्यु
सं० १९८६

समर्पण

कट्टर सनातन धर्मविलम्बी, परोपकारी

काशी गोशाला के सर्वस्व, परमदयालु तथा

मारवाड़ी समाज के रत्न, काशी-निवासी

स्वर्गीय

रायसाहब श्रीयुक्त रामरत्नदासजी के हिया

महोदय

की

पुण्यस्मृति में

सादर

समर्पित

—लेखक

प्रथम संस्करण की भूमिका

देहधारी मात्रका जीवन, ब्रह्मचर्य पर ही स्थित है। खासकर मानव-जातिके लिए तो यही वात है। ऐसे प्रयोजनीय एवं महत्त्व-पूर्ण विषयपर जितनी भी पुस्तकें निकाली जायें, थोड़ी ही हैं। यही सोचकर मैं भी आज यह 'ब्रह्मचर्यकी महिमा' नामकी पुस्तक लेकर अपने पाठकोंके सामने उपस्थित हो रहा हूँ। यद्यपि हिन्दीमें इस विषयपर दो-एक पुस्तकें निकल चुकी हैं, फिर भी यह पुस्तक कई अंशों में विशेषता रखती है।

ब्रह्मचर्यके प्रत्येक पहलुओंपर तो काफी प्रकाश ढाला ही गया है, साथ ही उसके अत्यन्त आवश्यक अंग प्राणायाम, आसन तथा गार्हस्थ्य-जीवन-विधि आदिको भी बड़ी ही सरलताके साथ समझानेका प्रयास किया गया है। इस पुस्तक-द्वारा पाठकगण यौगिक प्राणायाम भी सीख सकते हैं। आशा है, हिन्दी-जनता इस पुस्तकसे लाभ उठाकर मेरे परिश्रम को सफल करेगी।

ता० २—१—२८
हिन्दी-पुस्तकालय
मिर्जापुर सिटी

निवेदक—
सूर्यवलीसिंह

कत्तव्य

मैं अपने शरीर की रक्षा करूँगा व्यायाम करके इसकी शक्ति बढ़ाऊँगा ताकि इसके द्वारा स्वत्वरक्षा कर सकूँ।

[स्वामी सत्यदेव]

प्रस्तावना

“ब्रह्मचर्य की महिमा” तो ब्रह्मचर्य का स्वयं अनुभव ही है। वह अनुभव शब्दों द्वारा जितना ही बतलाया जाय, थोड़ा ही है। ऐसा मालूम होता है कि ब्रह्मचर्य ही एक ऐसी शक्ति है जिसे प्राप्त करने से मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है—यहाँ तक कि ब्रह्म को भी प्राप्त कर सकता है और इसीलिये उसे ब्रह्मचर्य कहते भी हैं। यह शक्तियों की माता है पर आजकल हम लोग अपने आप को अत्यन्त दुर्बल और विवश पाते हैं। इसका कारण यदि कुछ है तो वह ब्रह्मचर्य की उपेक्षा ही है। इस पुस्तक में लेखक ने इस उपेक्षा और इससे होनेवाले भीपण परिणामों को बहुत कुछ दिखा दिया है। ब्रह्मचर्य के लाभ और उपाय भी विस्तार के साथ बतलाये हैं। पुस्तक सर्वसाधारण के लिये और विद्यार्थियों के लिये विशेष उपयोगी है। ऐसी पुस्तकों का जितना अधिक प्रचार होगा, इसमें सन्देह नहीं कि ब्रह्मचर्य की महिमा लोग उतना ही अधिक जानेगे और उससे लाभ उठावेंगे।

लक्ष्मणनारायण गदे

द्वितीय संस्करण की भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक का द्वितीय संस्करण पाठकों के सामने उपस्थित किया जा रहा है। पहली बार प्रकाशित होते ही हाथों हाथ ब्रिक्षाना एवं पत्र-पत्रिकाओं की भूरि-भूरि प्रशंसाएँ ही इस पुस्तक की उपयोगिता के प्रमाण हैं। अब की बार कुछ मित्रों की राय थी 'हस्त-मैथुन' और 'गुदा-मैथुन' प्रकरण को निकाल देने की। पर मैंने वैसा करना उचित न समझा। क्योंकि पढ़ने में चाहे वे अश्लील प्रतीत हों, किन्तु दुरी आदतों से बचाने के लिए दोनों प्रकरणों का रहना आवश्यक है। अन्त में हम मारवाड़ी सामाजिक होनहार नवयुवक स्थानीय गोशाला के उत्साही कार्यकर्त्ता श्री मुरारीलाल केडिया को तथा स्थानीय फर्म वावू जैदयालजी मदनगोपाल को धन्यवाद देते हैं, जिनकी कुग से यह दूसरा संस्करण छपकर तैयार हो सका है।

ता० १ दिसम्बर १९३१ }
बुलनाला, काशी }

निवेदक
सूर्यदलीसिंह

प्रतिज्ञा

वीर्यरक्षा मेरा परम कर्तव्य है, मैं इसकी रक्षा कर अपने शरीर को पुष्ट करूँगा। मैं देश के लिये ब्रह्मचारी रहूँगा अर्थात् मैं गुलाम सन्तान उत्पन्न नहीं करूँगा। [स्वामी सत्यदेव]

विषय-सूची

पहला प्रकरण		तीसरा प्रकरण	
ब्रह्मचर्य—	१	ब्रह्मचर्यकी विधियाँ	५०
ब्रह्मचर्यकी महिमा	२	स्तुति—	५४.
ब्रह्मचर्यके प्रकार	१२	प्रातःकाल ध्यान करने	
ब्रह्मचर्यकी तुलना ♀		योग्य पद्म	५५
(ब्रह्मचर्यकी महिमा)	१४	रहन-सहन—	६२
ब्रह्मचर्यसे लाभ	१८	सर्वेरे उठनेके लाभ	६३
बीर्यकी उत्पत्ति	२०	शुद्ध वायु और	
		शयन-विधि	६४
दूसरा प्रकरण		मल-मूत्र त्याग—	६६
अष्ट मैथुन	२४	कोष्ठ-शुद्धिके उपाय	६९.
हस्त-मैथुन	२६	गुह्येन्द्रिय-शुद्धि	७०
गुदा-मैथुन	२८	मुख-शुद्धि और स्नान	७२
स्कूलों और कालेजोंमें		आहार—	७७
दुराचार—	३१	फलाहार	८१
भ्रष्टाचरणके लक्षण	३७	दुरधाहार	८२
माँ-बापके कर्तव्य	४२	चौथा प्रकरण	
ब्रह्मचर्यसे आरोग्यता	४४	संगति	८४
ब्रह्मचर्यसे आयु-शुद्धि	४८		

* नोटः—पृष्ठ १४ में ब्रह्मचर्य की तुलना के स्थान पर ब्रह्मचर्य की महिमा छप गया है पाठ्कगण उसे ब्रह्मचर्य की तुलना पढ़ें।

ग्रंथावलोकन	८६	खड़ाऊँ	१२०
पवित्र हृषि	८८	लँगोट धौंधना	१२२
पाँचवाँ प्रकरण		सूर्यताप	१२३
वाल-शिक्षा	९०	प्राणायास	१२४
ब्रह्मचर्य पर अथर्ववेद	९१	आसन	१२५
चारों वर्ण और आश्रम	९३	शीर्पासन	१३०
उपनियन और		सिद्धासन	१३३
विद्याभ्यास	१००	वक्तृत्व-कला	१३५
व्यायाम	१०३	प्रेम	१३६
छठा प्रकरण		देश-सेवा	१३८
खो-ब्रह्मचर्य	१०७	भारत-माता	१३९
काम-शमनके उपाय	११२	सांपुरुष-जीवन	१४२
सातवाँ प्रकरण		नम्रता	१४३
गृहस्थाश्रममें प्रवेश	११४	फुटकल घाते	१४४
अमोघ वीर्य	११७	ब्रह्मचर्य की भलक	१४६
उध्वरेता	११८	प्रार्थना हत्यादि	१४७
उपवास	११९	ब्रह्मचर्य का महत्व	१५०
		धर्मशक्ति (पद्म)	१५२

ब्रह्मचर्यकी महिसा

पहला प्रकारण

ब्रह्मचर्य

सतसङ्गति मुद मङ्गल मूला । सोइफल सिधि सब साधन फूला ॥
सठ सुधरहिं सतसङ्गति पाई । पारस परसि कुधातु सुहाई ॥

साधु चरित सुभ सरिस कपासू । निरस विसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा । वन्दनीय जेहि जग जसु पावा ॥

—रामचरित-मानस

तो ब्रह्मचर्यके बहुतसे अर्थ होते हैं, किन्तु यहाँ हमारा अभिप्राय वीर्य-रक्षासे है, और ब्रह्मचर्यका यही अर्थ प्रचलित भी है। 'ब्रह्म' शब्दका अर्थ—वढ़ना, प्रसार, विकास,

परब्रह्म, वीर्य, सत्य आदि बहुतसे अर्थ होते हैं और चर्यसे अध्ययन, रक्षण, नियम, उपाय, साधन आदिका वोध होता है। वीर्यकी रक्षा करनेवालेको ब्रह्मचारी कहते हैं। ब्रह्मचारी उसे कहते हैं, जो ज्ञानकी वृद्धिके लिए यत्न करे, पवित्र होनेके लिए उद्योग करे अथवा द्विद्विष्टिका प्रयत्न करे। ब्रह्मचर्य बहुत ही प्राचीन तथा प्रभावोत्पादक है। इसीपर संसार टिका हुआ है। स्पष्ट रीतिसे यह समझना चाहिये कि वीर्यकी रक्षा करते हुए वेदाध्ययन-पूर्वक ईश्वर-चिन्तत करनेका नाम ब्रह्मचर्य है।

वास्तवमें हमारे वैदिक कालमें आयोंने ब्रह्मचर्यका प्रचार किया था। यह प्रथा पौराणिक कालतक मर्यादित रही, और यहींसे उसकी अवनति होने लगी तथा आज इस दशाको पहुँच गयी। ब्रह्मचर्यका थोड़ा-बहुत वर्णन चारों वेदोंमें पाया जाता है। हमारे सब धार्मिक प्रन्थ ब्रह्मचर्यके कायल हैं और यह कहते हैं कि सांसारिक और पारमार्थिक उन्नतिकी जड़ ब्रह्मचर्य ही है।

॥ ब्रह्मचर्य की महिमा ॥

ब्रह्मचर्यकी क्या महिमा है, यह लिखना साधारण काम नहीं; क्योंकि इसकी महिमाको वही मनुष्य जान सकता है, जो पूरा ब्रह्मचारी हो, किन्तु बतला नहीं सकता। वास्तवमें यदि देखा जाय, तो संसारमें जितने बड़े-बड़े काम हुए हैं, सब ब्रह्मचर्यके

ही प्रतापसे । ब्रह्मचर्यके बलसे ही देवताओंने सृत्युपर विजय पायी है ।

इस ब्रह्मचर्यकी इतनी बड़ी महिमा होते हुए भी आज हम उसकी महानताको भूलकर नीचताके दलदलमें फँसे हुए हैं । कहाँ हमारे वीर्यवान्, सामर्थ्यवान् तथा प्रतिभावान् पूर्वज और कहाँ वीर्यहीन, अकर्मण्य और पद्वदलित उनकी सन्तान हमलोग । आकाशपातालका अन्तर है । हमारे इस पनतका मूलकारण वीर्यनाश ही है । यदि आज हमलोग इस प्रकार नष्ट-वीर्य न हुए होते, तो इस अधोगति के गढ़में कदापि न गिरते । ब्रह्मचर्य-नाशसे ही हमारा सुख, तेज, आरोग्य, बल, विद्या, स्वातन्त्र्य और धर्म मिट्टी में मिल गया ।

जिस प्रकार दीवारों के आधारपर छत रहती है, जड़ोंके आधारपर वृक्ष खड़े रहते हैं, उसी प्रकार वीर्यके ही आधारपर मनुष्यका शरीर रहता है । ज्यों-ज्यों वीर्यका नाश होता जाता है, त्यों-त्यों हमारी तन्दुरुस्ती कम होती जाती है । वीर्यको नष्ट करने वाला मनुष्य कभी जीवित नहाँ रह सकता । इसीसे शंकर भगवान् ने कहा भी है :—

‘मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दु धारणात्’

अर्थात्—वीर्यकी एक वूँद नष्ट करना मरण है और उसकी एक वूँद भी धारण करना जीवन है । सचमुच ही यह कथन अमिट और यथार्थ है । वीर्यकी रक्षा करना ही जीवन है और उसका नाश करना ही मृत्यु है ।

वीर्य अनमोल वस्तु है। इसीसे चारों पुरुषार्थ साधित होते हैं और यही मुक्तिका देनेवाला भी है। ब्रह्मचर्य धारण किये जिना, न तो अवतक कोई मनुष्य संसार में श्रेष्ठ बन सका है और न बन सकता है। नष्ट-वीर्य मनुष्य कभी भी पवित्र, धर्मात्मा या महात्मा नहीं हो सकता। उन्नतिका मूलमन्त्र ब्रह्मचर्य ही है। हमारे पूर्वज आर्यलोग इसी ब्रह्मचर्य के प्रतापसे ही भू-मण्डलमें विख्यात थे, सब देशवाले उनका लोहा मानते थे और डरते थे। उनका सामाजिक और नैतिक जीवन प्रधानतया इसी ब्रह्मचर्यके ऊपर अधिष्ठित था। पर हाय ! महाभारतके साथ ही आर्योंके उत्तम सिद्धातोंका पतन हो गया। दिन-पर-दिन आर्योंकी अवनति होने लगी और अन्तमें यह दशा हुई कि हम उन्हींकी सन्तान होकर उनके आदर्शोंको भूल अनाचारके गढ़में गिर गये। ब्रह्मचर्यके नाशसे ही संसारमें आज हमलोग गुलाम कहे जा रहे हैं, चारों और अपमान सह रहे हैं।

धन्वन्तरि महाराज एक दिन अपने शिष्योंको आयुर्वेदका उपदेश कर रहे थे। पाठ समाप्त होनेपर शिष्योंने जिज्ञासा की कि, भगवन् ! कोई ऐसा उपचार बतलाइये, जिस एकके सेवनसे ही सब तरहके रोगोंका नाश हो सके। मनुष्यमात्रके कल्याणके लिए आप अपना अनुभव किया हुआ कोई एक ही उपाय बतलाने की कृपा कीजिये।

शिष्योंके मुखसे यह प्रश्न सुनकर धन्वन्तरिजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—प्रियवत्स ! तुम लोगोंको अनुभव किया हुआ

ऐसा ही एक उपचार बतलाते हैं, ध्यान से सुनो। इसकी सत्यता में
तनिक भी सन्देह नहीं है—

मृत्युव्याधिजरानाशी पीयूपं परमौपधम् ।
 ब्रह्मचर्यं महद्यत्नं सत्यमेव वदाम्यदम् ॥
 शान्ति कान्ति स्मृतिं ज्ञानमारोग्यञ्चापि सन्ततिम् ।
 य इच्छति महद्वर्मं ब्रह्मचर्यं चरेदिद ।
 ब्रह्मचर्यं परं ज्ञानं ब्रह्मचर्यं परं वलम् ।
 ब्रह्मचर्यं मयोहात्मा ब्रह्मचर्येवं तिष्ठति ॥
 ब्रह्मचर्यं नमस्कृत्य चासाध्यं सधयाम्यदम् ।
 सर्वलक्षणहीनत्वं हन्त्यते ब्रह्मचर्यया ॥

अर्थात्—यह मैं सच सहता हूँ कि मृत्यु, रोग तथा दुःखपैका
नाश करनेवाला अमृत रूप वड़ा उपचार, ब्रह्मचर्य रूप महायत्न
है। जो शान्ति, सुन्दरता, स्मृति, ज्ञान, आरोग्य और हत्तम सन्तति
चाहता है, वह इस संसारमें सर्वोत्तम धर्म ब्रह्मचर्यका पालन करे।
ब्रह्मचर्य ही परमज्ञान और परमधर्म है; यह आत्मा निश्चय रूपसे
ब्रह्मचर्यमय है और इसकी स्थिति भी भनुष्य शरीरमें ब्रह्मचर्यसे
ही होती है। ब्रह्मचर्यमय परमात्माको नमस्कार कर मैं असाध्य
रोगियोंको भी चंगा कर देता हूँ; इस ब्रह्मचर्यकी रक्षासे सब
तरहके अशुभ नष्ट हो जाते हैं।

ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे ही परमगति मिलती है। इसीसे
शंकरजीने अपने मुखारविन्दसे कहा है:—

तपस्तपद्याहुं ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम् ।

अर्ध्वरेताभवेद्यस्तु स देवो ननु मानुषः ॥

अर्थात्—तप कुछ भी नहीं है ब्रह्मचर्यही उत्तम तप है। जिसने वीर्यको अपने वशमें करलिया है, वह मनुष्य नहीं, देवता है। अखंड ब्रह्मचारी पितामह भीमने युधिष्ठिरको ब्रह्मचर्य का उपदेश करते हुए कहा है कि :—

ब्रह्मचर्यं सुगुणं, शृणुञ्च सुधाधिया ।

आजन्म मरजाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह ॥

यानी—मैं ब्रह्मचर्यका गुण बतलाता हूँ, तुम स्थिर दुद्धिसे सुनो। जो मनुष्य जन्मभर ब्रह्मचारी रहता है, उसे इस संसारमें कुछ भी दुःख नहीं होता।

सबसे पहला और मुख्य ब्रह्मचारी परमात्मा है। क्योंकि वह ब्रह्मके साथ-साथ रहता है। उसके बाद दो ब्रह्मचारी कहे जा सकते हैं। पहले ब्रह्मचारीका नाम शिवजी है। भगवान् शंकरजी परमयोगी हैं। इनको ब्रह्मचर्यका गुरु कहना अधिक उपयुक्त होगा। एक बार शिवजी अपने ब्रह्मचर्य-ब्रतकी हृदयाके लिए तपस्या कर रहे थे। इन्द्रने इनका तप भंग करनेके लिए कामदेवको इनके पास भेजा। फिर क्या था कैलासमें शिवजी पर वाण-वर्षा होने लगी। शिवजीने अपने योगवलसे इसका कारण जान लिया। उन्हें काम-देवके कपट व्यवहारपर क्रोध आया और प्रलय करनेवाले अपने तीसरे नेत्रको खोल दिया। महाकवि कालिदासने अपने कुमार-सम्भवमें लिखा है :—

क्रोधं प्रभो ! संहरसंहरेति ।
 यावद् गिरा रवे महतां चरन्ति ॥
 तावत्सवहिर्भवनेत्रजन्या ।
 भस्मावशेषं मदनध्यकार ॥

अर्थात् हे प्रभो ! अपने क्रोध को शान्त कीजिये, शान्त कीजिये !
ये शब्द आकाश में गूँजते ही थे कि शिवजीके उप नेत्रसे उत्पन्न
अग्नि ने कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया । चारों ओर हाहाकार
मच गया ।

दूसरे ब्रह्मचारीका नाम है शुक्राचार्य । दानव-गुरु शुक्राचार्यने
वीर्य-रक्षाके लिए बहुतसे उपाय बतलाये हैं । एक बार उनके
उपदेशोंसे असुर लोग बड़े बलवान हो गये थे । यहाँ तक कि देवता
लोग उनसे डरने लगे । शुक्राचार्यके पास 'संजीवनी' नामकी एक
विद्या थी, जिससे यह मृतकको भी जिला देते थे । इसलिए देव-
ताओंने अपने 'कच' नामक एक व्यक्तिको उनके पास यह अमोघ
ज्ञान प्राप्त करनेके लिए भेजा । शुक्राचार्यकी कृपासे वह विद्या मिल
गयी । वह संजीवनी विद्या यही वीर्य-रक्षाकी विद्या थी । इसीके
नियमोंपर चलनेसे लोग अमर हो जाते थे । इसीके प्रतापसे भीष्म-
जीमें इच्छा-मृत्यु की शक्ति थी । वीर्य-रक्षा ही संजीवनी है, इसके
सम्बन्धमें लिखा भी हैः—

“ह्येषा संजीवनी विद्या संजीवयति मानवम् ।

—सूक्ति ।

यानी यह संजीवनी-विद्या मनुष्यको अवश्यमेव मरनेसे बचा-
नेवाली है, इसीसे इसका नाम संजीवनी पड़ गया है।

कच देवगुरु वृद्धस्पतिका पुत्र था। जब यह शुक्रके पास विद्या
सीखनेके लिए गया, तब असुरों को यह बात मालूम हो गयी।
इसपर वे नाराज हुए और कचको मार डाला। किन्तु शुक्राचार्यने
कचको फिर जीवित कर दिया। इसी संजीवनी विद्याके प्राप्त
करनेसे ही कच परम सुन्दरी देवयानीका तिरस्कार करनेमें समर्थ
हुआ था।

इसलिए यदि तुम शंकर बनना चाहते हो, तो इस तीसरे नेत्र-
को प्राप्त करनेकी चेष्टा करो। अभ्यास और वैराग्य नामके ये
दोनों नेत्र हैं, इन्हें सार्थक बनाओ। फिर तीसरा नेत्र जो कि
मस्तिष्क में है और जिसका नाम भात्म-ज्ञान है, अपने-आपही
खुल जायगा। इस नेत्रके खुलनेपर ही मनोविकारोंका नाश
होता है। मनोविकारोंके नष्ट होनेपर ही मनुष्य अपना तथा संसार-
का हित कर सकता है, यह अमिट बात है।

पाठकगण इस बातको अनुसन्धान करनेपर जान सकते हैं कि
संसारके इतिहासमें ब्रह्मचर्यके जितने उदाहरण भारतमें मिल-
सकते हैं, उतने और कहीं नहीं। शिव और शुक्रके बाद दो और महान्-
ब्रह्मचारियोंके नाम उल्लेखनीय हैं। क्योंकि भारतके आर्य-साहि-
त्यमें इन दोनों महानुभावोंके जीवन-वृत्तान्तसे भी हमें अपूर्व शिक्षा-
मिलती है। पहलेका नाम है महावीर हनूमान। इनकी विस्तृत कथा
रामायणमें पायी जाती है। यह आजन्म अक्षुरण ब्रह्मचारी रहे।

इन्होंने अपने ब्रह्मचर्यका यहाँ तक पालन किया कि स्वप्नमें भी कभी इनका वीर्य नष्ट नहीं हुआ। ब्रह्मचर्यके प्रभावसे ही इनका शरीर बज्रके समान हो गया था। इन्होंने ब्रह्मचर्यके बलसे ही महापराक्रमी बहुतसे राक्षसोंका मद चूर्ण किया था। इसीके प्रतापसे इनमें अद्भुत वाक्-चातुरी और अपूर्व विद्वत्ता थी।

किञ्चिक्धाकांडमें लिखा है कि जब सुप्रीवने हनूमानको भेदजाननेके लिए रामचन्द्रजीके पास भेजा और हनूमान ब्राह्मणका रूप धारण करके रामचन्द्र और लक्ष्मणसे मिले, तब उनके भापणसे प्रसन्न होकर भगवान् रामचन्द्रने अपने छोटे भाई लक्ष्मणसे कहा:—

तमभ्यभापत् सौभित्रे सुप्रीव-सचिवं कपिम् ।

वाक्यज्ञं मधुरैर्बाक्यैः स्नेहयुक्तं मरिन्दमम् ॥

नानृग्वेदं विनीतस्य नायजुवेदं धारिणः ।

नासामवेद-विदुपः शक्यमेवं विभापितुम् ॥

नूनं व्याकरणम् कृत्वा भनेन वहुधा श्रुतम् ।

चहु व्याहरनानेन न किञ्चिदिय शब्दितम् ॥

न मुखे नेत्रयोऽथापि ललाटे च श्रुवोस्तथा ।

अन्येष्वपि च सर्वेषु दोप संविदितः कचित् ॥

अविस्तरम् सन्दिग्धमविलम्बितमव्ययम् ।

पुरस्थं कण्ठगे वाक्यं वर्त्तते मध्यम स्वरम् ॥

संस्कार क्रम सम्पन्ना मद्भुतामविलम्बिताम् ।

दद्यारयति कल्याणीं वाचं हृदय इर्पिणीम् ॥

—वाल्मीकीय रामायण ।

अर्थात्—हे लक्ष्मण ! मधुर वाक्यसे स्नेहयुक्त सुग्रीवके वाणी-विशारद मंत्री हनूमानसे चार्तालाप कर यह मालूम हुआ कि ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके न जानेवाले इस प्रकारका भाषण नहीं कर सकते। अवश्य ही इन्होंने व्याकरणका अच्छा अध्ययन किया है। कारण यह कि इतनी बातें हुईँ; पर इनके मुखसे एक भी अशुद्ध शब्द नहीं निकला। मुखमें, नेत्रमें, ललाटमें, भ्रूभागमें तथा और सब अंगोंमें कहीं भी दोष नहीं दिखलायी पड़ता। थोड़ेमें, स्पष्ट शब्दोंमें तथा शीघ्रतासे बड़े ही प्यारे शब्दोंमें तथा मध्यम स्वरमें इन्होंने बातें की हैं। सुसंस्कृत नियम-युक्त अद्भुत रीतिसे प्रिय तथा हृषित करनेवाली वाणी इनके मुखसे उच्चरित हुई है, तात्पर्य यह कि हनूमानजी अवश्य वेदज्ञ हैं।

पूर्ण ब्रह्मचारीमें कितनी हिम्मत होती है, यह हनूमानजीके कहे हुए शब्दोंसे ज्ञात हो जायगा। जब महारानी जानकीजी को ढूँढ़ते हुए बानरलोग समुद्रके तटपर पहुँचे, तब पार जानेके लिए किसीकी हिम्मत न पड़ी। फिर जामवन्तने उत्साहित शब्दोंमें श्रीहनू-मानजीसे कहा कि हे हनूमान, तुम पवन-पुत्र हो; तुममें कुर्ती भी वायुके समान है। तुम्हारे सिवा यह काम किसीका किया नहीं हो सकता। यह सुनकर हनूमानजीने इस प्रकार कहा:—

“श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे चलाया हुआ वाणि जिस पराक्रम और तेजीसे जाता है, उसी प्रकार मैं रावण द्वारा सुरक्षित लंका-पुरीमें जाऊँगा। यदि वहाँ मैं श्रीजानकीजीको न देख पाऊँगा, तो

उसी वेगसे देवलोक में चला जाऊँगा । यदि इतना परिश्रम करने पर भी जगज्जननी जातकीको न पाऊँगा, तो राज्ञसोंके राजा रावणको धौधकर यहाँ ले आऊँगा । या तो मैं कृतकार्य होकर सीताके साथ आऊँगा, या लंकाको समूल नष्ट करके रावणको पकड़ लाऊँगा ।”

अब दूसरे ब्रह्मचारी पितामह भीष्मका हाल सुनिये । पहले इनका नाम ‘देवन्रत’था । किन्तु पिताके पुनर्विवाहके लिए आजन्म ब्रह्मचारी रहनेकी कठिन प्रतिष्ठा करनेपर इनका नाम ‘भीष्म’ पड़ गया । बाद वंशनाश होता देखकर इनकी विसाताने इन्हें विवाह करनेकी आज्ञा दी । व्यासदेवने भी इसके लिए बहुत समझाया-बुझाया ; पर मनस्वी भीष्मने अपना प्रण नहीं छोड़ा । इसीसे आज भी किसीको हृद्वती देखफर लोग कह बैठते हैं कि तुमने ‘भीस्म-प्रतिष्ठा’ कर ली है । लोगोंके कहकर हार जानेपर भीष्मजीने अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया :—

त्यजेऽपि पृथिवी गन्धमापश्चरसमात्मनः—

ज्योतिस्तथा त्यजेऽपि वायुःस्पर्शगुणल्यजेत् ॥

विक्रमं वृत्रहाजहाद्भर्मं जहाऽपि धर्मराट् ।

नत्वहं सत्यमुत्खण्डुं व्ययसेय कथंच न ॥

—महाभारत ।

यानी चाहे भूमि अपने गुण गन्धको छोड़ दे, जलमें तरलत्व न रह जाय, सूर्य अपने तेजको छोड़ दें, वायु भी अपने स्पर्श गुणको त्याग दे, इन्द्र पराक्रम-हीन हो जायें और धर्मराज-धर्मको त्याग-

दें, किन्तु मैं कभी भी अपने प्रण से विचलित नहीं हो सकता।

इस प्रकार दृढ़ब्रती होने के कारण ही पितामह भीष्मको इच्छा-सृत्यु प्राप्त थी। इसलिए महत्वपूर्ण जीवन वितानेके लिए प्रत्येक मनुष्यको ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। विना ब्रह्मचर्यके कुछ भी साधित नहीं हो सकता, यह निश्चित है।

ब्रह्मचर्यके प्रकार

कायेन मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥

—याज्ञवल्क्य

मन, वचन और शरीरसे सब अवस्थाओंमें सदा और सर्वत्र मैथुनत्यागको ब्रह्मचर्य कहते हैं। यह ब्रह्मचर्य तीन प्रकारका होता है। एक तो शरीरसे मैथुन नहीं करता, दूसरा मनसे नहीं करता और तीसरा वचनसे नहीं करता। किन्तु सच्चा ब्रह्मचारी वही है, जो मन, वचन और शरीर तीनोंसे मैथुन न करे। अर्थात्— मनमें कोई वुरी वात न सोचे, मुखसे अनुचित शब्द न निकाले और शरीरसे वाह्य-पदार्थोंके संसर्गसे इन्द्रिय-तृप्ति न करे। कितने लोग ऐसे हैं, जो कायिक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, किन्तु मानसिक और वाचिकका पालन नहीं करते। वे समझते हैं कि कायिक पाप ही, पाप है। किन्तु यह उनकी भूल है। ऐसे लोग चहुत जल्द अष्ट हो जाते हैं। क्योंकि मनुष्य जो कुछ मुखसे

निकलता है तथा मानसमें जो कुल सोचता है, उसका असर पड़े। विना नहीं रहता।

इसी प्रकार कुछ लोग वाचिक ब्रह्मचर्यका पालन करनेमें ही अपनी कृतकृत्यता समझते हैं और कितने मानसिकको ही। किन्तु ये सभी भ्रान्त धारणायें हैं। जब तक इन तीनों से ब्रह्मचर्यका पालन नहीं किया जाता, तबतक न तो ब्रह्मचर्यका पालन ही हो सकता है और न वह टिक ही सकता है। क्योंकि इन तीनोंमें से एकके भी विगड़ने से सब चौपट हो जाता है। यद्यपि मानसिक ब्रह्मचर्य सबसे श्रेष्ठ है, तथापि वह भी कायिक और वाचिक ब्रह्मचर्य विना पुष्ट नहीं होता। कारण यह कि वाहरी कामोंका असर मानसपर पड़े विना नहीं रहता। ऐसी दशामें जो आदमी मनसे तो कोई दुरी बात नहीं सोचता, सदा विपर्योंसे दूर रखनेकी कोशिश किया करता है; किन्तु शरीरको बहकने देता है, वह बहुत जल्द गिर जाता है और मनपर उसका धातंक नहीं रह जाता। हाँ यह जरूर है कि मनपर अधिकार कर लेनेपर शरीरकी इन्द्रियाँ नहीं बहकने पातीं, किन्तु पहले इन्द्रियोंको भी हठ पूर्वक रोकनेकी जरूरत पड़ती है। ऐसा न करनेसे मनपर अधिकार हो ही नहीं सकता।

मनुष्यके बन्धन और मोक्षका कारण उसका मन है। ब्रह्मचर्य से विद्याभ्यास करते हुए धीरे-धीरे मनपर अधिकार करना चाहिये। सबसे पहले मनकी ही साधना की जाती है। जिसका मन सध जाता है, उसका शरीर और वचनपर भी अधिकार हो

जाता है। क्योंकि वाहरी जितने काम होते हैं, वे सब मनकी ही प्रेरणासे होते हैं। मनुष्य जो कुछ धोलता है, वह मनकी ही आज्ञा-से; जो कुछ काम करता है, सब मनकी ही आज्ञा मिलनेपर करता है। मनकी प्रेरणाके बिना इन्द्रियाँ कोई काम कर ही नहीं सकतीं। इसलिए सबसे पहले मनको चारों ओरसे खींचकर विद्या पढ़नेमें लगाना चाहिये। इससे स्वाभाविक ही मन विद्यान्वयसनी होकर सारे अनथोंको छोड़ देता है। यदि वह कभी वहके भी, तो तुरन्त उसे खींचकर विद्याभ्यास और ब्रह्मचर्य-पालनमें लगाना चाहिये।

॥ ब्रह्मचर्यकी महिमा ॥

वास्तवमें ब्रह्मचर्यकी तुलनामें संसारकी कोई भी वस्तु रखने योग्य नहीं। क्योंकि ऐसी उपादेय वस्तु संसारमें एक भी नहीं है। वीर्य मनुष्य-शरीरमें सूर्यरूप है। वीर्यके ही प्रतापसे यह शरीर अकाशित होता है। इस परम प्रकाशका लोप होते ही शरीरका नाश हो जाता है। यदि यह कहा जाय कि ब्रह्मवर्चस होना सबसे श्रेष्ठ है तो यह उचित नहीं। ब्रह्मवर्चस नाम है, आत्मज्ञानका। हम मानते हैं कि यह बहुतही ऊँची बात है, जबतक ब्रह्मवर्चस सिद्ध नहीं होता, तबतक आत्मा स्वतंत्रतापूर्वक ब्रह्मलोकमें नहीं जा पाती और ब्रह्मलोकमें विचरण करना ही सबसे श्रेष्ठ काम है। इसलिए ब्रह्मवर्चसकी श्रेष्ठता प्रत्यक्ष है। किन्तु ब्रह्मचर्यकी सिद्धिके बिना

कोई मनुष्य ब्रह्मचर्यस हो ही नहीं सकता। अतएव ब्रह्मचर्यस होना भी मनुष्य-जीवतके लिए ब्रह्मचर्यसे अधिक उपयोगिता नहीं रखता।

धर्मके साथ तुलना करनेमें भी वही बात है। केवल ब्रह्मचर्य-के अन्तर्गत सारे धर्मोंका समावेश हो जाता है। महर्षि कणादने लिखा है:—

“यतोभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः सधर्मः।

—वैशेषिक दर्शन

अर्थात्—जिस यत्नके द्वारा लौकिक और पारलौकिक उन्नति हो, उसे धर्म कहते हैं। दोनों उन्नतियाँ ब्रह्मचर्य द्वारा ही होती हैं। अतः मनुष्यका मुख्य धर्म ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य ही शरीर और आत्माका सर्वस्व है और इसीसे मनुष्यका विकास होता है।

एक बार नारदजीने विष्णुभगवान्से पूछा—हे भगवन्! वह कौनसी वस्तु है, जो आपको सबसे अधिक प्रिय है।

इसपर भगवान्से कहा,—हे मुनिवर! सुझे ब्रह्मचर्य-धर्म सबसे अधिक प्रिय है। जो मनुष्य इसका पालन करता है, वह निश्चय ही सुझको प्राप्त होता है। यही कारण है कि महात्मालोग ब्रह्मचर्य-सिद्धिके अतिरिक्त कुछ भी नहीं करते। जीवके लिए ब्रह्मचर्यसे बढ़कर त्रिलोकमें दूसरा धर्म नहीं। यह सुनकर नारद बहुत प्रसन्न हुए।

अब तपको लीजिये। हमारे पूर्वज तपस्याके बलसे ही मनुष्य मात्रका हित करते और भूमंडल में अक्षय यश प्राप्त करते थे।

यह शंका होती है कि वह तप क्या है। अतिका वचन हैः—“तपोवै ब्रह्मचर्यम्” अर्थात्—ब्रह्मचर्यही तप है। ब्रह्मचर्यकी रक्षाके लिए हो नाना प्रकारकी तपस्यायेंकी जाती हैं। इसीकी साधनासे अष्ट-सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। एकबार भी ब्रह्मचर्य-न्रत खंडित हो जानेसे अनेक वर्षका जप-तप नष्ट हो जाता है। क्योंकि वीर्य-रक्षासे ही आत्मन्तेज बढ़ता है। उसके नष्ट होने से आत्म-तेज भी नष्ट हो जाता है। इसलिए इसकी तुलनामें भी ब्रह्मचर्यही मुख्य वस्तु है। ब्रह्मचर्यसे चित्तमें शान्ति आती है, चित्तकी स्थिरतासेही तपस्या पूरी होती है और पमरपदकी प्राप्ति होती है। इसीसे शिवजीने कहा भी हैः—

“त तपस्तप इत्याहु ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम् ।”

—तन्त्रशास्त्र ।

अर्थात्—तप कुछ भी नहीं है ब्रह्मचर्य ही उत्तम तप है। इसी प्रकार गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने भी कहा हैः—

देव द्विज गुरु प्राज्ञ-पूजनं शौच मार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥

—श्रीमद्भगवद्गीता ।

यानी देव, ब्राह्मण, गुरु और विद्वान्की पूजा, पवित्रता और सरलता तथा ब्रह्मचर्य और अहिंसाको शारीरिक तप कहते हैं।

योगकी उच्चता जगत्प्रसिद्ध है। इसीसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है, यही धर्मका रूप है और यही परम तप भी है। ऐसे महत्वपूर्ण योगके विषयमें महर्षि पतंजलिने लिखा है—

“योगक्षिप्तवृत्ति निरोधः ।”

अर्थात् चित्तकी वृत्तियोंको रोकनेका नाम योग है। चित्तकी वृत्तियोंको रोकनेके लिए मनपर अधिकार करना आवश्यक होता है। और मन, विना ब्रह्मचर्यका पालन किये वश नहीं होता। अतः यहाँ भी ब्रह्मचर्यकी ही प्रधानता है। विषयी मनुष्यको योगकी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

सत्य, ईश्वर रूप है। क्योंकि परमात्मा सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप है। सत्यके आधारपर ही पृथिवी स्थित है। यह सत्य संसारका वीजरूप है। जहाँ सत्य है, वहाँ सब कुछ है, जहाँ सत्य नहीं, वहाँ कुछ भी नहीं। लिखा है:—

सत्यमेव जयते नानृतम्

सत्येन पन्थाविततो देवयानः ।

येनाक्रमन्त्यपयो ह्याप्तकामा

यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥

अर्थात् सत्यकी ही जय होती है, नकि असत्यकी। सत्यसे ही देवोंका मार्ग मिलता है। ऋषिलोग भी सत्यके प्रभावसे ही सफलता प्राप्त करते हैं, जहाँ सत्यकी सत्ता है, वहाँ सब सुख है।

किन्तु सत्यका पालन करनेके लिए दृढ़ताकी आवश्यकता पड़ती है। निवल आदमी सत्यका पालन कभी नहीं कर सकता। यदि किसी निवल आदमीको कुछ दुष्ट चारों ओरसे घेर लें और यह कहें कि तुम भूड़ कहो, नहीं तो हमलोग तुम्हें जानसे मार डालेंगे, तो निवल मनुष्य दरकर सत्यका पालन कदापि नहीं कर

सकता। पर सबल मनुष्य निर्भीकता पूर्वक कह बैठेगा, आत्मा अमर है, इसे कोई मारकाट नहीं सकता। रही शरीरकी बात, सो यह तो नाशवान है ही। इसलिए इस धमकीसे मैं मूँठ नहीं बोल सकता—कहूँगा वही जो सत्य होगा। इस प्रकार आत्मबल या दृढ़ता होनेपर ही सत्यकी रक्षाकी जा सकती है। वह दृढ़ता ब्रह्मचर्यद्वारा ही प्राप्त होती है। व्यभिचारी मनुष्यकी आत्मा कभी भी बलवान नहीं हो सकती। क्योंकि वीर्यका नाम ही बल है। वीर्यके बिना बल आवेगा कहाँ से? और बलके बिना सत्यकी रक्षा होगी कैसे? अतएव इसमें भी ब्रह्मचर्यकी ही प्रधानता है।

ब्रह्मचर्य ही इतनी प्रधानता होनेके कारण ही महर्षि अंगिराके पुत्र घोरनामा ऋषिने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा था कि ब्रह्मचारीके लिए कोई भी विशेष कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं। उसे चाहिये कि मृत्युके समय यह कहकर मुक्त हो जाय:-

हे प्रभो! आप अविनाशी हैं, एकरस रहनेवाले हैं। आप जीवनदाता तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं। वस इतनेसे ही उसकी मुक्ति हो जायगी, जप, तप, यज्ञ आदि कुछ भी करनेकी आवश्यकता नहीं।

॥ ब्रह्मचर्यसे लाभ ॥

ब्रह्मचर्यसे मेधा शक्ति बढ़ती है, मनवांछित वस्तुओंकी सरलतासे प्राप्ति होती है, दीर्घ-जीवन होता है, उत्साह बढ़ता है, तनु-

स्त्री ठीक रहती है, संसारमें यश फैलता है, सुन्दर वंश घलता है, रोगोंका नाश होता है, अपूर्व सुख मिलता है और अन्तमें उत्तम गति मिलती है।

पहले मेधाशक्तिको लीजिये। मेधाशक्ति मस्तिष्कमें रहती है। ब्रह्मचारीकी मेधाशक्ति इसलिए तीव्र हो जाती है कि वह वीर्य की रक्षा करता है। उसके मस्तिष्कमें सदा अच्छे-अच्छे विचार प्रवाहित होते रहते हैं। वीर्य की रक्षा करनेसे मस्तिष्क बहुत पुष्ट हो जाता है। मस्तिष्कके पुष्ट होनेसे मेधा तीव्र हो जाती है। इसीके प्रतापसे ऋषिलोग इतने बड़े मेधावी और विद्वान् होते थे कि बड़े-बड़े ग्रन्थोंको एकवार सुनकर ही कंठ कर लेते थे। उनके पास नाना प्रकारकी विद्यायें और कलायें थीं। किन्तु हम योड़ीसो बातें याद छरके भी भूल जाते हैं। सौ-सौ धारकी रटी हुई पंक्तियाँ भी अवसर-पर याद नहीं आतीं। इसका कारण यही है कि ब्रह्मचर्य ठीक न होनेके कारण हमारी मेधा-शक्ति बिलकुल निवल पड़ गयी है।

ब्रह्मचर्यके प्रभावसे ही जब हनूमानजी सूर्य भगवान्‌के पास चेद् पढ़नेके लिए गये, तब उन्होंने कहा कि, हमें पढ़नेमें कोई आपत्ति नहीं, किन्तु मैं जो कुछ कहूँगा, उसकी पुनरावृत्ति न करूँगा। ऐसी दशामें तुम्हें कोई लाभ न होगा, क्योंकि एकवार सुनकर प्रहरण कर लेना कठिन है। इसके अलावा तुम्हें हमारे रथके साथ-साथ दौड़ते हुए पढ़ना पड़ेगा—सो भी आगे मुख करके नहीं। क्योंकि मुख तो पढ़नेके लिए हमारी ओर रखना पड़ेगा। महावीरने यह बात मान ली सौर सूर्यके द्रुतगामी रथके साथ-साथ विद्या पढ़ते

हुए उलटे पाँच दौड़ते अस्ताचल तक गये । किर सूर्यने परीक्षा ली । उन्होंने दिनभरके पढ़े हुए मंत्रोंको कह सुनाया । यह है ब्रह्मचर्यका प्रताप ।

॥ वीर्यकी उत्पत्ति ॥

वीर्याद्वारा शास्त्रोद्धरणम्

मनुष्य-शरीरमें जो सार-तत्त्व है, उसीको वीर्य कहते हैं । वीर्यकी रक्षा करनेवालोंका शरीर शुद्ध तथा मन प्रसन्न रहता है । वैद्यक-शास्त्रने जीवनका मूल-तत्त्व इस वीर्यको ही माना है । यह वीर्य, आहारका अन्तिम तत्त्व है । आयुर्वेदका मत है:—

रसाद्रकं ततोमांसम् मांसान्मेदः प्रजायते ।
मेदस्याऽस्थिस्ततो मज्जा मज्जायाः शुक्र सम्भवः ॥

—सुश्रुताचार्य ।

अर्थात्—भोजनके पचनेपर रस, रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे वीर्य पैदा होता है । रससे लेकर मज्जा तक प्रत्येक धातु पाँच रात-दिन और छेढ़ घड़ीतक अपनी अवस्थामें रहती है । बाद तीस दिन-रात और नौ घड़ीमें रससे वीर्य बनता है, ऐसा भोज तथा अन्य आयुर्वेदके आचारोंने लिखा है । स्पष्ट रीतिसे यों समझना चाहिये कि मनुष्य जो कुछ आज भोजन करता है, उसका वीर्य बननेमें पूरा एक महीना लगता है । इसी प्रकार और इतने ही समयमें श्वी-शरीर में रज तैयार होता है ।

इस वीर्यके अधीन ही शारीरिक और मानसिक सारी शक्तियाँ रहती हैं। इसीके प्रभावसे ब्रह्मचारियोंका शरीर बल-वीर्यसे पूर्ण, सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट तथा पवित्र देखा जाता है। व्यभिचारी पुरुष ज्ञानिक सुखके लिए अपने वीर्यका नाश कर डालते हैं, अतः उनका शरीर निस्तेज, निर्वल, कुरुप तथा बुद्धिहीन हो जाता है। वीर्यनाश-से ही मनुष्यकी सृत्यु भी शीघ्र हो जाती है।

एक महीनेमें वीर्य तैयार होता है, इसीसे आचार्योंने एक महीनेसे पहले मैथुनका निपेध किया है। क्योंकि इससे पहले वीर्यके बाहर निकलनेसे सब धातुओंमें क्षीणता आ जाती है। धातुओंमें क्षीणता आ जानेसे शरीरके सब अंग निर्वल हो जाते हैं, और अनेक तरहके रोग आ घेरते हैं। जो मनुष्य इसकी चिन्ता न करके धरा-वर वीर्य निकालता जाता है, उसका वीर्य कभी भी परिपक्व नहीं हो पाता। ऐसी दशामें उससे उत्पन्न होनेवाली सन्तान भी निर्वल, अल्पायु और श्रीहीन होती है।

साधारणतया वीर्यके पकनेका यही समय है, किन्तु शरीरके चलावलसे कुछ पहले और पीछे भी इसका पकना सम्भव है। एक मासमें जो रज या वीर्य तैयार होता है, वह अत्यन्त जीवनी-शक्तिसे भरा हुआ होता है। इस अमूल्य रत्नको केवल गर्भाधानके अभियायसे ही शरीरसे बाहर निकालना उचित है। यदि इसकी आवश्यकता न हो तो कभी भी शरीरसे पृथक् नहीं करना चाहिये।

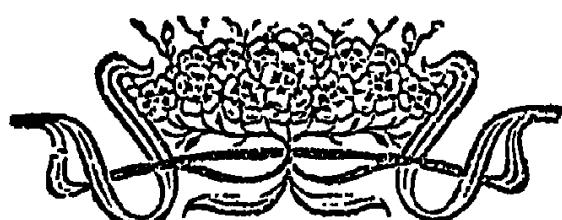
यह वीर्य मनुष्यके शरीरभरमें प्रसरित रहता है, किन्तु इसका मुख्य स्थान मस्तिष्क है। कुछ लोगोंका कहना है कि ४० ग्रास

आहारसे १ व्यूँद रक्त और ४० व्यूँद रक्तसे १ व्यूँद वीर्य तैयार होता है। वैज्ञानिकोंका मत है कि २ तोला वीर्यके लिये १ सेर रक्त और एकसेर रक्तके लिए १ मन आहारकी आवश्यकता होती है। जो भी हो यह बात सर्व-सम्मत है कि वीर्य बहुत ही कम मात्रामें तैयार होता है और इसका प्रभाव शरीरके सब अंगोंपर रहता है। वीर्यसे ही इन्द्रियोंमें शक्ति रहती है, इसके बावर मूलयवान् पदार्थ वसुधाम कोई नहीं है। ऐसे पदार्थकी अवहेलना करनेके समान मूर्खता और क्या हो सकती है ?

अब यह बात सहज ही समझमें आ सकती है कि यदि नीरोग मनुष्य सेरभर अन्न रोज खावे तो ४० सेर अन्न वह चालीस दिन-में खा सकेगा। अतएव यह सिद्ध हुआ कि चालीस दिनकी कमाई दो तोला वीर्य है। इस हिसाबसे ३० दिनकी कमाईमें केवल डेढ़ही तोला वीर्य प्राप्त होता है। ऐसे पदार्थको शरीरसे निकाल देना कितना बड़ा अनर्थ है। इसपर लोग पूछ सकते हैं कि जब यह इतना कम तैयार होता है, तब रात-दिन विषय करनेवालोंके शरीरमें यह आता कहाँसे है ? प्रश्न बहुत हीठीक है, किन्तु इसमें बात यह है कि हम पहले ही कह आये हैं कि मनुष्यके शरीर में वीर्य सदा कुछ-न-कुछ बना रहता है। यदि वीर्य शेष हो जाय, तो शरीर जीवित ही नहीं रह सकता। दूसरी बात यह भी है कि ऐसे मनुष्योंका वीर्य अपने असली रूपमें आनेके पहले ही निकलता जाता है, इसलिए उनके वीर्यको वीर्य कहना ही अनुचित है।

यह वीर्य पुरुष-शरीरमें सोलह वर्षकी अवस्थामें प्रकट होता है।

इससे पहले वीर्य नहीं रहता, यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि वीर्य के बिना तो शरीर टिक ही नहीं सकता। इससे पहले रहता-अवश्य है, पर प्रकट इसी अवस्थामें होता है। यह काल वीर्यके प्रकट होनेका है, परिपक्व होनेका नहीं। पचीस वर्षकी अवस्थामें यह परिपक्व होता है। जो लोग इसे पूर्ण रीतिसे सुनित रखते हैं, उन्हींका वीर्य इस अवस्थामें परिपक्व होता है, और जो लोग प्रकट होते ही नष्ट करने लगते हैं, उनलोगोंका वीर्य तो कभी परिपक्व होता ही नहीं। यही कारण है कि पचीस वर्षकी अवस्थातक वीर्यकी पूरी रक्षा करने के लिए या ब्रह्मचर्यका पालन करनेके लिए आचार्योंने कहा है। इसके पहले वीर्य अपरिपक्वावस्थामें रहता है। जो लोग वीर्य को परिपक्व नहीं होने देते और उसका दुरुपयोग करने लगते हैं, वे अपने जीवनको ही अन्धकारमय बना देते हैं। ऐसे लोग आजन्म अकर्मण, पौरुषहीन तथा दुखी बने रहते हैं। प्रसन्नता तो ऐसे लोगोंके पास कभी फटकने भी नहीं पाती। किन्तु दुःखकी बात है कि आजकल मूर्खताके कारण हिन्दूसमाजमें पचीस वर्षकी अवस्थातक लोग ४-६८ बच्चोंके बाप बन जाते हैं, और उन बच्चोंकी मृत्युसे अथवा रुग्णतासे बिलखते नजर आते हैं।



दूसरा प्रकारण

अष्टमैथुन

इसक्षन उपायोंसे वीर्य-नाश होता है, उन्हें मैथुन कहते हैं।
जि इसलिए ब्रह्मचारियोंको मैथुनसे बचना चाहिये।
यह मैथुन आठ प्रकारका होता हैः—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
 संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया-निष्पत्तिरेवच ॥
 एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
 विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्ट लक्षणम् ॥

—दक्षसंहिता ।

स्मरण, कीर्तन, केलि, अवलोकन (दृष्टिपात), गुप्त-भाषण, संकल्प, अध्यवसाय, और क्रिया-निष्पत्ति, इन आठ प्रकारके मैथुनोंका वर्णन शास्त्रकारोंने किया है। अब इन आठोंका विवरण पृथक् पृथक् नीचे लिखा जाता हैः—

—स्मरण—किसी जगह पढ़े हुए, देखे हुए, सुने हुए या चित्रमें देखे हुए स्त्री-रूपका ध्यान, चिन्तन या स्मरण करना ।

२—कीर्तन—खियोंके रूप, गुण, और आगोंकी चर्चा करना
अथवा इस विषयके गीत गाना तथा गन्दी बातें करना आदि ।

३—केलि—खियोंके साथ खेलना, जैसे फाग, ताश आदि ।
अथवा उनके साथ अधिक वैठना-उठना और मनोविनोद करना ।

४—प्रेक्षण—किसी खींको नीच-दृष्टिसे या छिपकर बार-बार
देखना तथा नीचतापूर्ण संकेत करना ।

५—गुहा-भाषण—खियोंके पास वैठकर गुप्त बातें करना,
शृंगार-रस-पूर्ण उपन्यास, कहानियाँ, नाटक आदि पढ़ना या
उनकी चर्चा करना, काम-चेष्टासे भरी हुई बातें कहने-सुननेमें
निमग्न रहना ।

६—संकल्प—किसी अप्राप्य खींकी प्राप्तिके लिए हड़ होना
तथा मनमें उसे पानेके लिए निश्चय करना ।

७—अध्यवसाय—खीं-सहवासमें आनंदका अनुभव कर उसके
पानेके लिए प्रयत्न-शील होना ।

८—प्रत्यक्ष सम्मोग करके वीर्य स्वलिपि करना ।

आदर्शब्रह्मचारियोंमें इन आठमेंसे एक का भी होना बड़ा
ही हानिकारक है । इनमें से एक भी आदत रहनेसे ब्रह्मचारी नष्ट
हो जाता है । इनमें से एक भी मैथुनमें फँस जानेसे मनुष्य आठों
मैथुनोंमें फँस जाता है । मैथुनोंके प्रभावसे वीर्यके कण अपने
स्थानसे च्युत होकर अण्डकोपमें आ जाते हैं और फिर वे किसी-
न-किसी प्रकार, स्वप्नमें या पेशावके साथ—बाहर निकल जाते हैं ।

इनके अतिरिक्त दो तरहके मैथुन और हैं जो अत्यन्त

घृणित, अत्यन्त हानिकारक और जघन्य हैं। उनमें एकका नाम है, हस्त-मैथुन और दूसरेका नाम है, गुदा-मैथुन।

॥ हस्त-मैथुन ॥

लो-प्रसंग तो सृष्टि-विज्ञानके अनुकूल माना गया है; किस्तु हस्त-मैथुन अप्राकृतिक है। डाक्टर हिलका कहना है:—“हस्त-मैथुन वह तेज़ कुलहाड़ी है, जिसे अज्ञानी युवक अपने ही हाथों अपने पैरोंमें मारता है। उस अज्ञानीको तब चेत होता है, जब हृदय, मस्तिष्क और मूत्राशय आदि निर्वल हो जाते हैं, तथा स्वप्नदोष, शीघ्र-पतन, प्रमेह आदि दुष्ट रोग आ घेरते हैं और जननेन्द्रिय छोटी, टेढ़ी, कमज़ोर होकर गृहस्थ-धर्मके अयोग्य हो जाती है।”

आजकल नवयुवकोंमें यह हस्त-मैथुन भीषण रूपसे फैला हुआ है। इस मैथुनसे बालकोंका सत्र-कुछ चौपट हो जाता है। इस दुर्ब्यसनका प्रचार नवयुवक विद्यार्थी तथा अविवाहित पुरुषोंमें विशेषतर हो रहा है। एकबार जो इसके चक्करमें पड़ जाता है, वह जन्मभर इस संहारकारीके फन्देसे नहीं छूट पाता। दुःखकी बात है कि आजकल यह रोग बड़े-बड़े विद्वानोंमें भी फैला हुआ है। हस्त-मैथुन एक ऐसा राक्षस है जो बड़ी निर्देशतासे मनुष्य-शरीरको निचोड़ डालता है। इससे इतनी हानियाँ होती हैं कि चनका उल्लेख करनेसे एक छोटीसी पुस्तिका तैयार हो सकती है।

इसलिए यहाँपर संक्षिप्त वर्णन ही करके नवयुवकोंको साक्षात् कर दिया जायगा । जिस प्रकार किसी लकड़ीमें धुन लग जानेसे वह गिलकुल खोखली हो जाती है, उसी प्रकार इस अधम कुटेशसे मनुष्यकी अवस्था जर्जरित हो जाती है । इससे इन्द्रियकी सब नसें ढीली पड़ जाती हैं । फल यह होता है कि स्नायुओंके दुर्बल होनेसे जननेनिद्र्यका मुख मोटा हो जाता है तथा उसकी जड़ पतली पड़ जाती है । इन्द्रिय-शिथिलताके कारण वीर्य बहुत जल्द-गिर जाना है, वार-वार स्वप्नदोप होने लगता है, ज्ञान भी विपर्य-सम्बन्धी घातें मनमें उदय होते ही वीर्य गिरने लगता है और अन्तमें कुछ दिनोंके बाद भरी-जवानीमें ही मनुष्य नपुंसक होकर दुःखपेका अनुभव करने लगता है । ऐसा मनुष्य खी-समागमके सर्वथा अयोग्य हो जाता है । उसका वीर्य पानीकी तरह इतना पतला पड़ जाता है कि स्वप्नदोपके बाद घरपर उसका दागतक नहीं दिखायी देता ।

हस्त-मैथुनसे इन रोगोंका होना अनिवार्य है—लिंगेनिद्र्यकी निर्वलता, दृष्टिकी कमी, तृप्ति, मन्दाभिमि, स्वप्नदोप, बुद्धि-नाश, कोष्ठ-बद्धता, मस्तक-पीड़ा तथा प्रमेह । इनके अलावा मृगी, उन्माद, क्षय, नपुंसकता, आदि रोग भी होनेकी पूरी सम्भावना रहती है और सौमें नव्ये आदमी इन रोगोंके शिकार होते देखे गये हैं । पागलखानोंमें १०० में ९५ आदमी व्यभिचार और हस्त-मैथुनहींके कारण पागल बने पाये जाते हैं । यही दशा अपनी खीसे अधिक भोग करनेवालोंकी भी हुआ करती है ।

यों तो व्यभिचारमात्र ही बुरा है, पर यह हस्तमैथुन सबसे बुरा है। हस्तमैथुन द्वारा वीर्यके निकलनेसे कलेजेपर बढ़े जोरोंका धक्का लगता है। इस धक्केसे खाँसी, श्वास, यद्धमा जैसे भयानक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इस रोगसे मनुष्यकी आयु इतनी कमी होती है कि उसका लेखा लगाना भी कठिन है। अज्ञानताके कारण तथा बुरी संगतिमें पड़ जानेसे वालक इस दुष्कर्ममें फँस जाते हैं। पहले तो इससे सह्योदारी मिलता है, किन्तु कुछ ही दिनोंमें वे अपनी मूर्खतापर अफसोस करने लगते हैं। क्योंकि इससे जो रोग पैदा होते हैं, वे लाखों प्रयत्न करनेपर भी आजन्म नहीं मिटते।

इससे मस्तिष्क बहुत जल्द कमज़ोर पड़ने लग जाता है। मस्तिष्क कमज़ोर पड़ते ही आँखोंकी ज्योति तथा कान व दाँतकी शक्ति भी कमज़ोर पड़ जाती है। असमयमें ही धाढ़ भी झड़ने और पकने लगते हैं। हस्तमैथुनसे सारा शरीर पीला, ढीला, दुर्वल, रोगी, सुस्त और कान्तिहीन हो जाता है। फिर तो ऐसे लोगोंको विषयमें भी आनन्द नहीं मिलता, यद्यपि उस आनन्दकी चाहसे वे विषय करता नहीं छोड़ते। ऐसे लोगोंकी खियाँ कभी भी सन्तुष्ट नहीं होतीं और मुँझलाकर व्यभिचारिणी बन जाती हैं।

॥ गुदा-मैथुन ॥

पुरुषके साथ पुरुषका सम्मोग करना गुदा-मैथुन कहलाता है। यह भी हस्तमैथुनके समान ही तिन्द्य और हानिकारक किया है।

एक विद्वान् का कथन है कि इन दोनों मैथुनों के जन्मदाता परिचयमी देशवाले ही हैं। जो भी हो, हमें इन बातों से क्या काम ! यहाँ सिर्फ़ यह दिखलानेकी आवश्यकता है कि इससे क्या हानियाँ होती हैं ।

यह दुर्ब्यवहार अधिकतर अबोधमति १०-१२-१४ वर्ष के बालकोंके साथ किया जाता है। किन्तु कितने मनुष्य ऐसे होते हैं जो बृद्ध हो जानेपर गुदाभंजन करना नहीं छोड़ते । यह दोप अविवाहित पुरुषों और विद्यार्थियोंमें बेतरह फैला हुआ है। किन्तु इससे यह न समझ वैठना चाहिये कि विवाहित पुरुष इससे बरी हैं। ऐसे बहुतसे मनुष्य देखने में आते हैं, जो घरमें लौके रहते हुए भी इस दुर्जुणमें फँसे रहते हैं तथा रात-दिन बालकोंके फँसाने की कोशिश करनेमें ही व्यस्त रहते हैं ।

यह भी हस्तमैथुनके समान ही मनुष्यके जीवनको नाश करनेवाला रोग है। इसके कारण मनुष्य बल-रहित हो जाता है, समाजमें अपमानित होकर रहता है, सन्तान-उत्पन्न करनेकी शक्ति मारी जाती है, चित्त सदा खिल रहता है और वे सब रोग आघेरते हैं जो हस्तमैथुनके कारण पैदा होते हैं। गुदामैथुन करनेवाले नरपिशाचोंको गर्भी-(उपदंश) की धीमारी भी हो जाया करती है। यह रोग कितना भयानक होता है, यह बतलाने की जरूरत नहीं। ऐसे नीच मनुष्य अपने जीवनका सर्वनाश तो करते ही हैं, साथ में उन बालकोंके जीवन को भी धर्वाद कर डालते हैं, जिन्हें अपने चंगुलमें फँसाते हैं। इसलिए यह कहना अधिक उपयुक्त-

होगा कि यह कर्म हस्तमैथुन से भी अधिक निकृष्ट और पापपूर्ण है क्योंकि उससे तो सिर्फ अपना ही नाश होता है और गुदामैथुन से तो दूसरे का भी सर्वेनाश किया जाता है। फिर वह बालक जिसको तुम अपने चंगुल में फँसाकर अपनी इच्छापूर्ण करते हो और उसे गुदामैथुन करना सिखजा देते हो—वहां होनेपर कितने ही बालकों को घौपट करके पाप बटोरता है और तुम्हें भी हिस्सा देता है; क्योंकि भूल कारण तुम्हाँ हो।

हाय ! यह कर्म कितना नीचतापूर्ण है ! हमारा तो अनुसान है कि गुदामैथुन करनेवाले लोग हत्याकारियोंसे भी बढ़कर पापी, क्रूर और नीच होते हैं। हत्याकारी तो ज्ञानभरमें जान ले लेता है, किन्तु ये राज्ञस तो जानसे मारते ही नहीं, बालकोंमें ऐसी कुटैवडाल देते हैं कि वेचारे जन्मभर धुलधुलकर मरते हैं, तड़पते हैं, कष्ट सहते हैं। प्राण ले लेना अच्छा है, पर इस तरह धुलधुलकर मारना बहां ही दुःखदायक है। जो अभाग इन दोनों लक्षणोंमें या इनमें से एकमें एकबार भी फँस जाता है, फिर वह जन्मभर छुटकारा नहीं पाता ; ये शैतान हाथ धोकर उसके पीछे पड़ जाते हैं। क्योंकि ऐसे मनुष्योंका चित्त निर्वल हो जाता है, इसलिए छोड़नेकी इच्छा मनमें उत्पन्न होनेपर भी वे अपने मनको वशमें नहीं कर सकते। हजारों प्रतिज्ञायें करनेपर भी अपनेको नहीं रोक सकते। विषयोंके सामने आते ही सारी प्रतिज्ञायें ताकमें झरी रह जाती हैं।

इस प्रकार वीर्यको नष्ट करनेसे मनुष्यका मनुष्यत्व ही लोप

हो जाता है। ऐसे लोग इतने कमज़ोर हो जाते हैं कि थोड़ी भी गर्भी या सर्दी लगते ही बीमार पड़ जाते हैं, रात-दिन बीमार ही रहा करते हैं। कोई भी नयी बीमारी पहले ऐसे ही लोगोंमें फैलती है।

किन्तु दुर्भाग्यकी बात है कि ये सब दुराइयों वहुधा उन स्थानोंमें पैदा होती हैं, जो हमारी शिक्षाके स्थान हैं। जिन शिक्षालयोंमें घच्चे चरित्रवान् बनने तथा कर्मनिष्ठ होनेके लिए भर्ती होते हैं, उन शिक्षालयोंमें उन्हें मुख्यतया इन्हीं दुराइयोंकी शिक्षा मिलती है। आजकलके शिक्षालय ही भद्र्यालय बन रहे हैं। लड़कोंको या बड़े विद्यार्थियोंकी कौन कहे, इन दुर्गुणोंको कितने अध्यापक ही छात्रोंको सिखला देते हैं, ऐसे अध्यापकोंको कितन शब्दोंमें सम्मोहित किया जाय, समझमें नहीं आता। जिनके ऊपर वज्ञोंकी सारी जिस्मेदारी हो, वे ही यदि कर्त्तव्यभ्रष्ट होकर नीच हो जायें, तो यह वडे ही दुर्भाग्यकी बात है। इसपर 'प्रताप'-सम्पादक श्रीगणेश शंकर विद्यार्थीजीने ता० ८ जुलाई सन् १९२८ के स्कूलों और कालेजोंमें 'दुराचार' शीर्षक अप्रत्येकमें बड़ा अच्छा प्रकाश डाला था। अतः उस लेखको हम ज्योंका त्यों यहाँ उद्धृत करते हैं—

“मनुष्य शिश्नोदर-सम्बन्धी वासनाओंका पुञ्ज है। इन्द्रिय सम्यक् रूपसे उसके कावूमें नहीं है। प्रयत्नशील मुमुक्षुका मन भी इन्द्रियोंकी व्याधियोंसे विचलित हो जाता है। मनुष्य-स्वभावकी यह दुर्वलता बड़ी दयनीय है। इस दिशामें अथक परिश्रम करने

वाले लोगोंने मानव-समाजके सामने इस विषयकी कठिनताओंका निरूपण बड़े स्पष्ट रूपसे किया है। भवगान् कृष्णने गीतामें कहा है कि इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करनेवाले नरोंका मन भी समय-समयपर इन्द्रियोंद्वारा आकृष्ट कर लिया जाता है, “इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः !” मनोनिप्रहका केवल एक ही उपाय है। वह है सतत अभ्यास और वैराग्य। ‘अभ्यासैन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्णते । किन्तु आजकल भारतवर्षके दुर्भाग्यसे हमारे यहाँ जिस शिक्षाका प्रचार है, उसमें युवकोंके चरित्र-गठनकी ओर रंचमात्र भी ध्यान नहीं दिया जाता। समय, मनोनिप्रह, शारीरिक बल-बद्धन और चरित्र-दृढ़ताको हमारे शिक्षाक्रममें कोई स्थान नहीं दिया गया है। यही कारण है कि हमारे नौजवानोंका आचरण बहुत ढीला-ढालासा रहता है। हमारी वर्तमान शिक्षा-संस्थाओंमें बहुत दिनोंसे एक घातक रोग फैज़ गया है। बालक और युवक एक दूसरेके साथ, नितान्त अवाञ्छनीय रीतिसे, मिजते-जुलते और मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करते नजर आते हैं। शिक्षा संस्थाओंके कई अध्यापकगणोंकी चित्तवृत्ति भी चिनगारियोंके साथ खिलबाड़ करती नजर आती है। जिन लोगोंने शिक्षालयों, जेलखानों, बोर्डिंग हाउसों और सिपाहियोंके रहनेके घेरेके घरोंका ध्यानपूर्वक तिरीकण किया है, उनका कहना है कि पुरुषोंके बीच आपसी कामुकता इन स्थानोंमें बहुत अधिक परिमाणमें पायी जाती है। पाश्चात्य विद्वानोंने इस सम्बन्धमें बहुत कुछ लिखा है। एड-वर्ड कारपेन्टर, जे० ए० साइमान्डस, वाल्डविटमेन, हेवलाक-

एलिस आदि मनस्त्रियोंने सानव-स्वभावकी इस कमजोरीका विवेचन करते समय यह दिखला दिया है कि सुधारकोंको इस दिशामें बहुत सोच-समझकर काम करना चाहिये। स्कूलों और कालेजों तथा उनके छात्रावासोंमें जो बालक शिक्षा पाते तथा निवास करते हैं उनके आचरणकी ओर ध्यान देना समाजका मुख्य कर्त्तव्य है। आजकल समाजके अज्ञानके कारण हमारे छोटे-छोटे निरपराध सुन्दर बच्चे दुष्ट-प्रकृति-मित्रा और पापी शिक्षकोंकी कामवासनाके शिकार हो रहे हैं। बालकोंके ऊपर जिस रीतिसे बलात्कार किया जाता है उसका थोड़ासा विवरण यहाँ देना असामिक न होगा। जिन सौ पचास स्कूल कालेजोंके निरीक्षण करनेका हमें अवसर मिला है, उन्हींकी परिस्थितियोंके अवलोकनसे प्राप्त अनुभवके बलपर हम ये सतरें लिख रहे हैं। प्रत्येक स्कूल या कालेजमें कुछ ऐसे गुंडे विद्यार्थियोंका समुदाय रहता है, जो सुन्दर बालकोंकी टोह लिया करता है। जब वे पहले-पहल स्कूलोंमें आते हैं, तब घदमाश-मण्डली उन्हें तंग करना, मारना-पीटना, उनकी किताबें छीनना एवं प्रत्येक रीतिसे उनका जीवन भार-भूत बनाना प्रारम्भ कर देते हैं। विचारा लड़का कहीं खड़ा है और उसे एक चपत जमा दी। कहीं उसकी किताब फाड़ फेंकी, तो कहीं उसकी कलम छीन ली। पहली छेड़छाड़ इस तरह शुरू होती है। लड़का विचारा मास्टरोंसे शिकायत भी करे तो उससे क्या? शैतान-मण्डली उसे ढराती-धमकाती है। उससे कहा जाता है—‘अच्छा बच्चाजी, निकलना बाहर, देखो कैसी भिट्ठी पलीद करते हैं तुम्हारी।’ असहाय

बलि-पशु इस प्रकार रोज़-ब-रोज़ सताया जाता है। धीरे-धीरे वह इन शैतानोंसे छुटकारा पानेके लिए उन्हींके गुद्दमें शरीक हो जाता है। बस, जहाँ वह इस प्रकार उस गुद्दमें शरीक हुआ कि उसका सर्वनाश प्रारम्भ होता है। जिस स्कूलमें शिक्षक भी उसी फतके हुए, उस स्कूलमें तो बालकोंके नैतिक जीवनकी मृत्यु ही समझिये। दुष्ट साथियों और शैतान भास्टरोंकी कामवासनाका साधन वता हुआ बालक अपनी दुरवस्था कहे तो किससे कहे ? माता-पिताओं से ? भला किस बालककी इतनी हिस्मत है कि वह अपने माता-पितासे ये कष्टदायक बातें कहेगा ? बालकोंके निशानबे फो सदी रक्खकरण इतने मूर्ख होते हैं कि वे इन बातोंको समझ ही नहीं सकते। यदि उनके कानमें कभी कोई ऐसी बात पढ़ भी जाती है, तो वे बजाय इसके कि अपने बालकोंके साथ अत्याचार करने-बालोंकी खाल खींच ले, उल्टा वे अपने बच्चोंहीको पीटते हैं ! बच्चोंके लिए तो एक तरफ खाइ और एक तरफ कुँआँकोसी समस्या हो जाती है। इसलिए वे अपना दुःख किसीसे नहीं कहते। समाजकी कूरतामर्याडासीनता, एवं घृणित मित्रोंके पापाचारसे पीड़ित युवक अपने मनुष्यत्वको नष्ट करके अपने भाग्यको कोसा करते हैं। जो बालक इस प्रकार सताये जाते हैं, उनकी चोरता, दृढ़ता, यौवनकी उन्मत्त धीरता और मनुष्यत्वका सर्वनाश हो जाता है। वे रात-दिन जननेन्द्रिय सम्बन्धी विषयोंका चिन्तन किया करते हैं। उनकी संजीवनी शक्तिका हास हो जाता है। उनका पठन-क्रम अस्त-च्यस्त हो जाता है। प्रस्फुटित तोन्त्र स्मरण-

शक्ति नष्टहो जाती है। मनुष्य-समाजको अमूल्य रत्न प्रदान करने की क्षमता रखनेवाली मेधा-शक्ति वृँद-वृँद टपककर धूलमें मिल जाती है। जो मनस्थी हो सकते, जो उदात्त विचारक बनते, जो अमर गायक होते, जो समय-चक्रपर आरुढ़ होकर अपनी मन-चीती दिशामें उसे बुमा सकते, वे मानव-समाजके भावी नेतागण जीवन के प्रारम्भ के प्रथम क्षणामें ही वर्वरता, नृशंसता, दुश्चित्रिता और दौरात्म्यकी ज्वालामें मुजसकर मृतप्राय हो जाते हैं। हमारे पास इस समय स्कूल-कालेजोंकी आचरणहीनताको दरसानेवाली कोई ऐसी सप्रमाण तालिका नहीं है, जिसके आधारपर हम इस भयानक महामारीकी सर्वव्यापकता का दावा कर सकें। लेकिन सत्यान्वेषणका तरीका संख्याशास्त्रके अलावा और कुछ भी है। वह है अपनी आन्तरिक अनुभव-शक्ति। उसीके बलपर हम अत्यन्त निर्भीकता पूर्वक यह कहते हैं कि आजकल हमारे अधिकांश विद्यालय इस रोगसे आक्रान्त हैं। अभीतक इस विषयकी ओर किसीने ठीक तरीकेसे, समाजका ध्यान नहीं खींचा। इस विषयका साहित्य लिखा जाए गया है। लेकिन उससे सामाजिक सङ्ग्रावनाके जागरणमें जितनी सहायता मिलती चाहिये थी, उतनी नहीं मिल सकती। सामाजिक जीवनके इस अंगका चित्रण करनेके लिए ऐसे साहित्यकी जरूरत है, जो समाजको तिलमिला दे, लेकिन उसे प्रकारकी वासनाओंकी ओर मुकानेका काम न करे। वद्माशकी वद्माशियोंका चित्रण ऐसा सरस और मोहक न हो कि वद्माशियोंकी ओर रुक्मान हो जाय। जारूरत तो है।

ममाजके हृदयको जलानेको, नकि उसे गुदगुदाने की। लेकिन जबतक समाजकी आँखें नहीं खुलतीं, तबतकके लिए कथा यह महत्वपूर्ण प्रश्न योंही छोड़ दिया जाय ? नहीं। इसका प्रतिकार करनेकी आवश्यकता है। माता-पिताओंका यह कर्तव्य है कि वे अपने बालकोंके प्रति इस सम्बन्धमें अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करें। बालकोंके मनसे यह भय निकल जाना चाहिये कि उनकी कष्ट-कथा यदि उनके अभिभावक सुनेंगे, तो वे उल्टा उन्होंको दण्ड देंगे। जबतक बच्चोंके दिलमें यह भय है, तबतक वास्तविक परिस्थितिका पता लगाना असंभव है। बालकोंके रक्षकोंका कर्तव्य है कि वे अपने बच्चोंमें अपने स्वयं के प्रति पूर्ण विश्वास और प्रेमके भाव प्रेरित करें। सरकार यदि चाहे तो, इस विषयमें, बहुत कुछ सहायक हो सकती है। हमारे पास अक्सर ऐसे सम्बाद आते रहते हैं, जिनमें डिट्रिक्ट बोर्डों के शिक्षकोंकी दुश्चित्रता का चलेख रहता है। इस प्रकारके शिक्षायत-पत्रोंका बराबर आते रहना शिक्षा संस्थाओंके दूषित होनेका लक्षण है। प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा-संस्थाओं तथा छात्रावासों-के अध्यापकों, निरीक्षकों और छात्रोंमें प्रचलित दुर्गुणों और दुराचारोंकी जाँच करना तथा अनाचारोंको निर्मूल करनेके साधनों-की सिफारिश करनेके सम्बन्धमें प्रान्तीय सरकार एक कमेटी बना कर इस प्रबन्धकी गुरुता और व्यापकताका ठीक-ठीक पता लगा सकती है। बिहार और उड़ीसाजी सरकारने सन् १९२१ई० में प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षाके प्रदत्तपर विचार करनेके लिए

एक कमेटी वैठाजी थी। उस कमेटीकी एक उपसभितिने स्कूलोंके सदाचारके प्रश्नपर विचार किया था। उस कमेटीने इस सम्बन्धमें अपनी जो रिपोर्ट पेश की है, उसका विवरण हम किसी अगले लेखमें देंगे। इस समय तो हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि विहार सरकारकी तरह यदि यू० पी०, सी० पी०, पंजाब, आसाम, बंगाल आदि प्रान्तोंकी सरकारें भी इस प्रश्नकी व्यापकताका पता लगानेका प्रयत्न करें, तो वड़ा भारी काम हो सकता है। यह प्रश्न पहुँच महत्वपूर्ण है। सार्वजनिक सदाचारके प्रश्नोंपर लिखनेवालोंके कन्योंपर वड़ी जवादेस्त जिम्मेवारी होती है। सम्भव है हमारे पाठकोंको यह प्रश्न—किंवा इसपर कुछ लिखना और इसकी खुले खजाने चर्चा करना—अद्वितीय जैसे, लेकिन बालकोंकी रक्षाके लिए जो चिन्ताशील हैं, वे इस ओर जहर आकृष्ट होनेकी दया दिखाएँगे। हम ग्राम्यिक, माध्यमिक और हाई स्कूलके हेडमास्टरों, कालेजके प्रिन्सिपलों तथा इस प्रश्नको सुलझानेकी चिन्ता करनेवाले अन्य विद्वज्ञोंसे इस सम्बन्धमें विचार करने तथा इस दुर्गुणसे मुक्ति पानेका उपाय सोचनेकी प्रार्थना करते हैं।”

॥ भ्रष्टाचरणके लक्षण ॥

१—नष्टवीर्य वालक सदा डरता है, अपनेसे वडे लोगोंके सामने आँख उठाकर देख नहीं सकता। वह सदा किसी महान्

अपराधीकी भाँति शर्मिन्दा होकर नीचे देखता है अथवा सुख छिपाता फिरता है। सदा निरुत्साह रहता है। बहुतसे चालाक लड़के अपने दुर्गुणको छिपानेके लिए व्यर्थ ही छाती निकालकर ऐठते हैं। वे जम्हरतसे अधिक ढीठ बननेकी चेष्टा करते हैं, किन्तु सुख कान्तिहीन रहता है।

२—लड़केका आनन्दमय हँसमुख चेहरा सदा उदास और फीका रहता है। बदन सुस्त रहता है, फुर्तीका नाम-निशान भी नहीं रह जाता। हर वक्त रोनेकीसी सूखत बनी रहती है। स्वभाव चिड़चिड़ा, क्रोधी और रुखा हो जाता है। सुख पीला पड़ जाता है और तेज जाता रहता है। गालोंकी स्वाभाविक गुलाबी छटा लोप हो जाती है और काले धब्बे पड़ने लगते हैं। किन्तु यह चिह्न १५-१६ वर्षकी अवस्थाके बाद दिखलायी पड़ता है।

३—आँखें भीतर धूँस जाती हैं, गाल पचक जाते हैं। आँखों-के नीचे गदा हो जाता है और काले धब्बे पड़ जाते हैं।

४—बाल पक्कने और मङ्गने लगते हैं। स्पष्ट रीतिसे कोई रोग दिखलायी नहीं पड़ता, पर बदन सूखता जाता है। अंग-प्रत्यंगमें शिथिलता छा जाती है; किसी अच्छे काममें दिल नहीं लगता। थोड़े परिश्रमसे ही थकावट आ जाती है, चत्साह नष्ट हो जाता है, खेलने-कूदनेमें भी दिल नहीं लगता। खूराक कम हो जाती है। हाजमा बिगड़ जाता है।

५—ज्ञासा धमकाते ही छातीमें धड़कन पैदा हो जाती है। थोड़ा भी दुःख पहाड़सा प्रतीत होने लगता है।

६—चार-वार भूती भूख लगती है, अपच और कच्ज होता है। घटपटो मसालेदार चीजें खानेकी इच्छा होती है। अच्छी तरह नौद नहीं आती। यदि आती भी है तो बड़ी गहरी नौद। सोकर उठते समय शरीरमें महा आलस्य भरा रहता है। आँखों-पर धोक्सा लदा रहता है।

७—रातमें स्वप्नदोष होता है। वीर्य पतला पड़ जाता है, पेशावके साथ वूँद-वूँद करके वीर्य गिर जाता है; यह भी हस्त-मैथुन तथा गुदामैथुनका मुख्य चिह्न है। बरावर पेशाव होता है, पुन्सत्त्व नष्ट हो जाता है। शरीरमें मंद-मंद पीड़ा होती है। अकारण ही शरीर ठण्डा पड़ जाया करता है।

८—शृङ्गार-प्रधान नाटक, उपन्यास आदि पढ़ने, गन्दे चित्र देखने तथा विषय-सम्बन्धी वार्ते करने की विशेष इच्छा होती है। सदा कुसंगतिमें बैठने की प्रवृत्ति होती है, दुराचार अच्छा लगता है।

९—बियोंके साथ वार्ते करना, युवतियोंकी ओर ताकना पापी स्वभावका लक्षण है।

१०—मुखपर मुँहासे निकलना, उठते समय आँखोंके सामने अँधेरा छा जाना, मूर्छा आना, मस्तिष्क का खाली हो जाना, अपने हाथकी रखी हुई वस्तुका स्मरण न रहना, बहुत जल्द भूल जाना, दुष्ट आचरणके लक्षण हैं।

११—चित्त का अत्यन्त चंचल, दुर्बल, कामी और पापी हो जाना, कोई काम करते-करते बीचहीमें छोड़ देना, क्षण-क्षणपर विचारोंको बदलते रहना, दिमागमें गर्मी छा जाना, आँखोंमें जलन

पैदा होना तथा पानी बहना, क्षणहीमें रुष्ट तथा क्षणहीमें प्रसन्न हो जाना, माथेमें, कमरमें, मेरुदंडमें, छातीमें वारस्वार दर्द पैदा होना, दाँतके मसूड़े फूलना, शरीरसे बदवू निकलना, वीर्य नाशके खास चिह्न हैं।

१२—तलवे और हथेलियोंका पसीजना, कॅप कॅपी आना, हाथपैरमें सनसनी आना भी इसी वीर्यनाशका कुफल है।

१३—मेरुदंडका मुँक जाना, आवाजकी कोमलताका नष्ट हो जाना, शरीर बेडौल हो जाना, तथा पढ़ने-लिखनेमें उत्साह न रहना नष्टवीर्य बालकके लक्षण हैं। किसी-किसी भ्रष्ट लड़केकी आवाज कड़ी भी नहीं होती।

१४—ठीक आवस्थासे पहले ही युवावस्थाके चिह्न दिखायी पड़ने लगना भी वीर्यनाशका ही लक्षण है। किन्तु यह बात उन लड़कोंके सम्बन्धमें नहीं कही जा रही है, जो स्वस्थ, हट्टे-कट्टे, फुर्तीले, सब कामोंमें तेज तथा बलवान होते हैं।

उपर लिखे लक्षण जिन बालकोंमें पाये जायें, उन्हें समझ लेना चाहिये कि दुश्चरित्र हैं। ऐसे लड़कोंको इस ढंगकी शिक्षा मिलनेकी आवश्यकता होती है, जिससे उनका दुर्गुण दूर हो जाय और आचरणमें पवित्रता आ जाय। किन्तु सबसे आवश्यक और उत्तम तो यह हो कि पहलेहीसे बालकों पर नजर रखी जाय, ताकि उनमें बुरी आदतें पढ़ने ही न पावें। क्योंकि ये आदतें ऐसी हैं कि एकबार पड़ जानेपर इनका छूटना कठिन ही नहीं असम्भव हो जाता है।

माता-पिताकी लापरवाहीके कारण कितने ही अच्छे लड़के कुसंगमें पड़कर विगड़ जाते हैं। फिर तो कुछ ही दिनोंमें वे नाना प्रकार के रोगोंमें ऐसे जकड़ उठते हैं कि लज्जावश घरवालोंसे चर्चा न करके द्विषेष्ठिषेष डाक्टरों और वैद्योंको हूँढ़ने लगते हैं। इस प्रकार तरह-तरहकी अनर्गल औपधियोंके सेवनसे वे अपने स्वास्थ्य को और नष्ट कर डालते हैं। रोगके मूल कारणपर न तो उनका ध्यान जाता है और न डाक्टर या वैद्य ही चेत कराते हैं। अन्ततः परिणाम यह होता है कि बालकोंको पूँजी जब खत्म हो जाती है, तब वे अपने घरवालोंसे चोरी करने लगते हैं, रुपये, जेवर जो कुछ पाते हैं, लेकर हफ्तीमके पास पहुँचते हैं और धीरे धीरे चोरी करनेके भी गहरे आदी हो जाते हैं। जब यह आदत घरके लोगोंको मालूम हो जाती है, तब वे लड़केपर अविश्वास करने लगते हैं, फटकारते हैं, इस तरह हँगड़े और विरोधका अंकुर भी उत्पन्न होकर पुष्ट हो जाता है और सारा जीवन चिन्ता-प्रस्त हो जाता है।

नवयुवकोंको इस धातका व्यान रखना चाहिये कि धातुपौष्टिक जितनी औपधियाँ होती हैं, वे सब कामोत्तेजक होती हैं। उनके सेवनसे शरीरमें यदि कुछ ताकत भी मालूम पड़े, तो वह केवल मनुष्यकी भावनातथा उस दवाके साथ दूध, मलाई आदिके खानेका प्रभाव है, संसारमें ऐसा कोई भी वैद्य या डाक्टर नहीं है, जो दवाईयोंके जोरसे वीर्यहीनको वीर्यवान बनानेका सामर्थ्य रखता हो। यदि कोई इस तरहकी ढींग मारे, तो धृष्टता है। एकमात्र मनकी शुद्धि ही मनुष्यको ब्रह्मचारी बनानेमें समर्थ है।

१—वे दुरे लड़कोंके साथ न खेलने पावें, और न उनसे मित्रता ही करने पावें। बिना कहे-सुने घरसे बाहर न निकलने पावें, यदि कहीं जायें, तो कहकर जायें। गन्दे गीत न गाने पावें। और न सुनने ही पावें।

२—आश्लील पुस्तकें उनके सामने कभी न रखें। मुखसे कोई बुरी बात उनके सामने न कहे। चटपटी चीजें खानेको न दे।

३—बियोंमें बैठने तथा उनके साथ बातें करनेकी आदत न पढ़ने दे। योड़ी कसरत हमेशा करावे। नशीली चीजें खानेको न दे।

इसी प्रकारकी और भी बहुतसी बातें हैं, जिनसे बालकोंकी आदतें बिगड़ जाती हैं, उनसे उन्हें दूर रखना चाहिये। आगे चलकर स्थल-स्थलपर वे सारी बातें बतला दी जायेंगी। किन्तु जिन लड़कोंमें पीछे कहे गये लक्षण दिखलायी पड़ने लगें, उन्हें साफ और खुले शब्दोंमें वीर्यनाशके दुर्गुण बतलानेमें जरा भी संकोच नहीं करना चाहिये। इसमें लज्जा करना तथा अपमान समझना मानो अपनी सन्तानका सर्वनाश करना है। अतः उन्हें ब्रह्मचर्यके नियमोंका अवश्य ज्ञान करा देना चाहिये। बहुतसे लोग बच्चोंको किसी पराये मनुष्यके पास सुला देते हैं। वे इसके हानिलाभपर विचार नहीं करते। उन्हें चाहिये कि ऐसा कभी न करें।

ब्रह्मचर्यसे आरोग्यता

किसी अनुभवी वैद्यने कहा है कि—एक वर्ष नियमित ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे भयंकर रोग भी जड़से नष्ट हो जाता है। इस चिकित्सासे उन्होंने कई रोगियोंको अच्छा भी किया था। वे नाड़ी-द्वारा वीर्य-नाशक पुरुषको जान लेते थे और फिर उसे कोई दबा न देकर केवल ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन कराते थे। जो ऐसा नहीं करता था, उससे बातें ही नहीं करते थे।

कहावत है कि 'तन्दुरुतस्ती लाख नियामत'। आरोग्यतासे ही मनुष्य सब कुछ कर सकता है। आरोग्यता ही मनुष्यकी सबसे बड़ी सम्पत्ति है। यही अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंकी जड़ है। जिसने आरोग्य लाभ नहीं किया, उसने कुछ भी नहीं किया और न वह कुछ कर ही सकता है। रोगी मनुष्य किसी कामका नहीं। वह सबके लिए भार-स्वरूप हो जाता है। रोगी मनुष्य संसार और परामर्थ दोनोंमें अचोग्य ठहरता है। उसके लिए भोग-विलासकी सारी चीजें दुखदायी बन जाती हैं। क्योंकि उनका उपभोग तो वह कर नहीं सकता, उलटा उन्हें देखकर मन-ही-मन भस्म होता रहता है। भोगी पुरुष सदा रोगी बना रहता है। वह कभी भी सुखी नहीं हो सकता। व्यभिचारी पुरुषको कहापि आरोग्यता प्राप्त नहीं होती। धनसे भी आरोग्यता प्राप्त होना असम्भव है। आरोग्यता एक ऐसी वस्तु है, जो एक मात्र

वीर्य धारण करनेसे ही प्राप्त होती है। वीर्यवान् पुरुषकी दासी बनकर रहनेमें ही यह प्रसन्न रहती है। वीर्यवान् मनुष्य ही बलवान्, आरोग्यवान्, माननीय और अक्षय-कीर्तिधारी हुआ करते हैं।

संसारमें तीन बल हैं। एक शरीरबल, दूसरा ज्ञानबल और तीसरा मनोबल। इन तीनोंमें मनोबल सबसे ऊँचा है। इसके बलके विना सब बल व्यर्थ हो जाते हैं। किन्तु यह मनोबल विना शरीर-बलके प्राप्त नहीं होता। शरीरबल ही हमारे सब बलोंका मूल कारण है। यह शरीर-बल आरोग्यता है। इसलिए हमें चाहिए कि शरीर-बल प्राप्त करनेके लिए वीर्य-रक्षा-द्वारा आरोग्यता प्राप्त करें। इसके विना सब व्यर्थ है।

आरोग्यता का सर्वोत्तम साधन ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचारी पुरुष ही आरोग्य हो सकता है। आज हमें भारतके उत्थानके लिए आत्म-बलकी मुख्य आवश्यकता है। किन्तु हम पहले ही कह आये हैं कि आत्मबलकी जड़ है शरीरबल यानी आरोग्यता। इसलिए शरीर-बलके न होनेपर हम संसार-संग्राममें विजय प्राप्त नहीं कर सकेंगे। दुर्वेलताके कारण हम सदा काम-क्रोधादिके दास बने रहेंगे। और फिर शरीर-बलकी तो पग-पगपर आवश्यकता है। यदि हमारे शरीरमें बल न हो तो हम उठकर मल-मूत्रका त्याग भी नहीं कर सकते। यदि बल न हो, तो हम खायी हुई वस्तुको पचा भी नहीं सकते, यदि हाथोंमें बल न हो तो हम थालीसे प्राप्त उठाकर मुखमें डाल भी नहीं सकते। कहाँतक कहा जाय शरीर-

बलके विना संसारका छोटा-से-छोटा और अत्यन्त प्रयोजनीय काम भी हम नहीं कर सकते। अतः शरीर-बल प्राप्त करना सबसे प्रथम ध्येय होना चाहिये। क्योंकि शरीर-बल ही सब ध्येयोंका मुख्य आधार है। विना शरीर-सुधारके हम किसी अवस्थामें सुखी और स्वतंत्र नहीं हो सकते और न किसी कासमें खिद्दि ही प्राप्त कर सकते हैं।

किन्तु हमारा केवल यही एक शरीर नहीं है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण-भेदसे तीन प्रकारके शरीर होते हैं। इस शरीर रूप-शब्दमें अगणित शरीर-धारी कीटाणु सेनाके रूपमें रात-दिन हमारी रक्षा करते हैं। इन सबका राजा आत्मा है। विजय उसी राजाकी होती है, जिसकी सेना बलवान और प्रचंड है। ठीक यही हाल हमारे शरीर रूपी राज्यपर विजय प्राप्त करनेके लिए या इसका नाश करनेके लिए असंख्य कीटाणुओंकी सेना वाशु मंडलमें फिरा करती है जो इन्हें निबल पाते ही शरीरमें घुस जाती है। इसलिए शरीरकी रक्षाके लिए अपने भीतर रहनेवाले और रक्षा करनेवाले कीटाणुओंको बलवान रखना बड़ा ही आवश्यक है। पर ये बल-वान तभी रह सकते हैं, जब पूर्ण रीतिसे वीर्य की रक्षा की जाती है तथा ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन किया जाता है।

जिस मनुष्यमें शरीरबल नहीं होता, उसे पग-पगपर अप-मानित भी होना पड़ता है। इसलिए ब्रह्मचर्यका पालन करना नितान्त प्रयोजनीय है। इसपर एक एतिहासिक कथा बड़ी ही उत्साहित करनेवाली है। वह यह कि बलवीर्यके प्रतापसे ही बड़े

वडे योद्धाओंके रहते हुए पितामह भीष्म, काशीराजकी अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका नामकी तीन कन्याओंको जीत लाये । अम्बिका और अम्बालिकाका विवाह तो अपने दोनों छोटे भाई चित्रांगद और विचित्रवीर्यके साथ कर दिया, पर ब्रह्मचर्य-न्रत धारण करनेके कारण उन्होंने अम्बाको लौट जानेकी आज्ञा दी । इसपर अम्बाको बड़ा ही दुःख हुआ । वह दुखी होकर परशुराम-जीकी शरणमें गयी और अपनी सारी कष्ट-कथा सुनाकर उनके हृदयमें करुण-भाव उत्पन्न कर दिया । परशुरामने कहा कि हम तुम्हारे लिए भीष्मसे कहेंगे और यदि वह न मानेंगे, तो उनके साथ युद्ध करेंगे । यदि वे परास्त हो गये, तो उनके साथ तुम्हारा विवाह करा दिया जायगा ।

इस प्रकार वे अम्बाको लेकर पितामह भीष्मके पास आये और कहा,—तुम इस कन्याके साथ विवाह करलो । परशुरामजीकी इस बातको, भीष्मजीने अस्वीकार कर दिया । भीष्मने कहा कि, यदि युद्धमें आप मुझे हरा देंगे, तो मैं इस कन्याके साथ अवश्य विवाह कर लूँगा । दोनोंमें घोर युद्ध शुरू हो गया । भीष्मके हृदयमें ब्रह्मचर्यकी शक्ति भरी हुई थी । उन्होंने उसीका स्मरण किया । उन्हें विश्वास हो गया कि मेरा पक्ष न्याय का है, विजय मेरी ही होगी । अन्ततः वही हुआ भी । परशुरामजी हारकर चले गये, ब्रह्मचारी भीष्मने ब्रह्मचर्च-द्वारा प्राप्त शरीर-बज्जकी प्रतिभासे सारे संसारको चकित करते हुए अपने मान-गौरव तथा प्रतिज्ञाकी पूर्णरीतिसे रक्षा की । सोचनेकी बात है कि यदि भीष्ममें शरीर

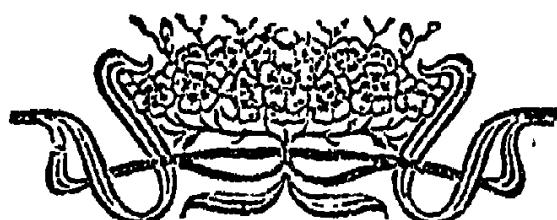
बल न होता तो क्या व अपनी की हुई प्रतिज्ञाका निर्वाह कर सकते ? कदापि नहीं । तब तो महापराक्रमी परशुरामजी आनन्दानन्दन विजय प्राप्त करके भीष्मके गौरवको धूलमें मिला देते । आज इतिहासमें पितामह भीष्मका इतना ऊँचा स्थान कमी भी न रह गया होता ।

(ब्रह्मचर्यसे आयु-वृद्धि)

यह विलक्षण प्रचलित नियम है कि कुमारावस्था जितनी आयुतक रहती है, उससे पाँच गुनी या छः गुनी उस मनुष्यकी आयु होती है । कुमारावस्थाका अभिप्राय यह है कि युवावस्थाके काम-विकारका अभाव । यौवनावस्थाके कामविकारका प्रादुर्भाव जिस समय होता है, उससे पहले जो आयु बीत चुकी रहती है, उसीको कुमारावस्था कहते हैं । साधारणतया नियमित रूपसे रहनेवाले मनुष्यमें बीस वर्षकी अवस्थामें तारुण्य-भाव आता है, इसलिए मनुष्यकी आयु १०० से लेकर १२० वर्ष तककी मानी गयी है । किन्तु दुःख है कि आजकल बाल्यावस्था और कुमारावस्था का समय बहुत ही कम रह गया है; यही कारण है कि हमारी आयु भी घट गयी है । समाज और जातिमें ब्रह्मचर्यका घात करनेवाले तथा असमयमें ही तारुण्य लानेवाले विचार और कार्य होनेके कारण ही हमारा इस प्रकार हास हुआ है और होता जा रहा है । यदि फिर ओजस्वी विचारोंका प्रचार हो जाय, तो

अवश्य ही हमारी तथा हमारे बच्चोंकी आयु वढ़ सकती है। हमारे पूर्वज महर्षियोंने यौगिक नियमों का प्रचार करके यही सोचा था कि वह अवस्था केवल २० वर्ष ही न रहे वलिक इससे भी अधिक वढ़े। किन्तु समयके फेरसे आज ठीक उसका उल्टा हो रहा है। यौगिक नियमोंके स्थानपर दूसरे बुरे व्यवहार ही प्रचलित हो गये हैं। अतएव देशके नेताओंका कर्तव्य है कि वे देशवासियोंको योगके नियमोंपर चलानेका प्रयत्न करें। प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह वाल्यकालकी अवधि बढ़ानेमें प्रयत्नशाल हो। किन्तु यह तभी सम्भव है, जब ब्रह्मचर्यका उचित रीतिसे पालन किया जायगा। विना ब्रह्मचर्यका पालन किये किसी भी सुख या ऐश्वर्य की आशा करना निरी मूर्खना है।

इस वातका हमेशा ध्यान रखना चाहिये कि एकबारके वीर्य-पातसे साधारणतः दस दिनकी आयु घटती है। इस प्रकार लगातार सालभरतक प्रतिदिन वीर्य-पात करते रहनेसे कमन्से कम दस वर्षकी आयु कम हो जाती है।



तीसरा प्रकरण

ब्रह्मचर्यकी विधियाँ

(३०) तामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि, जिस मनुष्यकी गी जैसी भावना रहती है, वह उसी प्रकारका हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि परमात्मा कल्प-वृक्ष है। जिस प्रकार कल्पवृक्षके नीचे बैठकर मनुष्य जिस वस्तु की चिन्ता करता है, वह तुरन्त ही सामने आ जाती है, उसी प्रकार परमात्माकी सृष्टिमें मनुष्य अपनी भावनाके अनुकूल ही हो जाता है। इसलिए मनुष्यको सदा अच्छी भावना करनो चाहिये। कहनेका अभिप्राय यह कि मनुष्य अपने ही विचारोंसे श्रेष्ठ और नष्ट होता है, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। यह कहना मूर्खता है कि अमुक आदमीको अमुक व्यक्ति ने चौपटकर दिया। कोई किसीको बनाया विगड़ नहीं सकता। हम मानते हैं कि सत्संग और कुसंग से मनुष्यका बनाव और विगड़ होता है, किन्तु उसमें भी मनुष्यके विचारोंकी ही प्रधानता है। यदि उसके विचार अच्छे होंगे तो वह कुसंगमें पड़ेगा ही क्यों? और यदि उसके विचार बुरे होंगे

तो वह सत्संगमें कदापि न जाएगा। इसलिए मनुष्यको बनाने-विगड़नेवाला दूसरा कोई नहीं है, वह अपने ही कर्मोंसे बनता-विगड़ता है। गीताकारने कहा भी है:—

“मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः ।”

मन ही मनुष्यको दास बनाता है, मन ही उसे डरपोक बनाता है और मन ही मनुष्यको स्वर्ग या नरकमें ले जाता है। स्वर्ग या नरक लूपी गृहकी कुञ्जी परमात्माने हमें ही दे रखी है। मनुष्यकी सुगति और दुर्गति उसके भले-बुरे संकल्पों तथा विचारोंपर ही निर्भर है। पापी विचारोंसे वह पापात्मा तथा पुण्यमय विचारोंसे वह अबश्यमेव पुण्यात्मा बन जाता है। पतित-से-पतित मनुष्य भी यदि उच्च और पवित्र विचारका हो जाय तो वह भी उच्च और पवित्रात्मा बन सकता है। किन्तु भगवान् कहते हैं कि उसको बुद्धिका निश्चय पूरा होना चाहिये। क्योंकि यिन्हा दृढ़ विश्वासके कुछ नहीं होता; “विश्वासो फलदायकः ।” विश्वास जितना ही अधिक होगा, उतना ही उसका फल भी अधिक होता है। इस विश्वासका सम्बन्ध मनसे है। इसीसे इसमें मनोयोगी होनेकी जरूरत है। किसी वातमें संशय करना ठीक नहीं “संशयात्मा विनश्यति” यानी संशय करनेवाला मनुष्य नाशको प्राप्त होता है।

सब पूछिए तो बुरी कल्पनाओंसे ही मनुष्यका सर्वनाश होता है। अतः ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह हठ-पूर्वक कुबुद्धिको तथा बुरे विचारोंको त्यागकर सुबुद्धि और सुविचारोंको दृढ़ विश्वासके साथ धारण करे। और यह निश्चय कर ले कि इसीसे

हमारा उद्धार होगा—इसे मैं मरते दम तक कभी न छोड़ूँगा। किन्तु इसके लिए किसी समय-विशेष या शुभलग्नकी प्रतीक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं। यह तो संयम शुभ रूप है। शुरू करनेमें आगा-पीछा करनेवाला धोखा खाता है। जितने जल्द इस कार्यमें प्रवृत्त हो सको, उतना ही अच्छा। याद रहे कि मनुष्य जिस दिन जन्मता है, उसी दिन उसका अँगूठा कालरूपी सर्पके मुखमें पड़ जाता है। ज्यो-ज्यों दिन वीतते जाते हैं त्यों-त्यों मनुष्य-शरीरका अधिक भाग कालके मुखमें बुझता जाता है और एक दिन समूचा शरीर ही लोप हो जाता है। इसलिए कब हमारा यह नश्वर शरीर न रहेगा, इसका कोई ठीक नहीं है। ऐसी दशामें यदि हम किसी कामको कलपर टाल दें, और आज ही हमारा शरीर नष्ट हो जाय, तो कलपर टालना किस काम थावेगा? किन्तु यदि आजहीसे उसे शुरू कर दें और शुरू करते ही हमारा शरीर नष्ट हो जाय, तो अन्तिम विचारानुसार हमारा जन्म हो जायगा और सारा काम बन जायगा। क्योंकि यह नियम है, कि मृत्युकालमें जैसा विचार रहता है, वैसा ही मनुष्यका जन्म भी होता है। पर इससे कोई यह न समझ बैठे कि पीछेके कर्म नष्ट हो जाते हैं। ऐसा कदापि नहीं होता। हाँ, यह अवश्य होता है कि अन्तिम भावनाकी अगले जन्ममें प्रधानता रहती है और पिछले कर्म गौण रहकर भोगमें समाप्त हो जाते हैं।

अतः ब्रह्मचारीको प्रतिदिन सोनेसे पहले आधा घण्टा या पांच घण्टा स्थिर-चित्त होकर पवित्र संकल्प करना चाहिये।

इससे सारे कुसंस्कारोंका नाश हो जाता है, और एक अद्भुत दैवी शक्ति प्रकट होती है। किन्तु इसमें घबड़ानेकी जखरत नहीं। एक दिनमें यह काम होनेवाली नहीं है। इसको बराबर विश्वास-पूर्वक करते जाना चाहिये। यह नहीं कि चार दिन किया और कुछ प्रकट रूपसे न मालूम होनेपर छोड़कर फिर नरकके कीड़े बननेके लिए निमग्न हो गये। आज धीज बोकर कल ही फलकी आशा करना उचित नहीं है। ऐसे अधीर और जल्दबाज लोगोंको कदापि चश नहीं मिलता और न उनकी उन्नति ही हो सकती है। यदि शीघ्र फल न मिले, तो समझो कि पहलेके पाप-संकल्प अधिक हैं; पर वे पुण्य संकल्पोंद्वारा अवश्य ही परास्त हो जायेंगे। जबतक हृदयके अपवित्र भाव पराजित न हो जायें, तबतक हृठ-पूर्वक तेजीके साथ चेष्टा करते जाओ। परिश्रमका फल व्यर्थ नहीं जाता।

यह याद रहे कि प्रतिष्वनि हमेशा ध्वनिके अनुकूल ही हुआ करती है। किसी ऊँचे मन्दिरमें तुम जैसा बोलोगे, वैसी ही प्रतिष्वनि भी होगी। ठीक यही बात पूजन-अर्चनके सबन्धमें भी है। यदि हम वरावर कहा करें कि, हे भगवन् ! हम बड़े ही वीर्यवान् हों, तो समूचा देश हमें वीर्यवान् कहने लगेगा और हम अनायास ही वीर्यवान् हो जायेंगे। अतः जिस प्रकारका हम अपनेको बनाना चाहें, उसी प्रकारकी हमें निःशंक भावसे प्रतिदिन स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये।

“तुलसी अपने रामको, रीझ भजे या खीझ।

खेत परेपर जामिहै, उलटा सुलटा बीज ॥”

ठीक यही दशा हमारे कर्मोंके फलकी है। मामूली धीज तो किसी कारणसे नहीं भी उगते, पर कर्म-धीज एक भी उगे थिना नहीं रहता, सभी फल रूप होते हैं, यह निश्चय है। गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा है:—

“तुलसी काया खेत है, मनसा भयउ किसान।

पाप, पुन्य दोउ धीज हैं, बुवै सो लुनै निदान ॥”

अतः प्राप्त फलोंके भोगमें दुःखी होना, कमजोरी और व्यर्थ है। क्योंकि जो कुछ किया है, उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा। चाहे मनुष्य कायर और दुखी होकर उसे सहे अथवा धीर और धीर होकर तथा उसमें सुख मानकर। हर हालतमें सहना अवश्य पड़ेगा। बिना सहे और भोगे छुटकारा नहीं होनेका। हाँ, बुद्धिमानी तो तब कही जासकती है, जब मनुष्य आगेके लिये सावधान होजाय, यानी ऐसा कर्मधीज न बोवे जिसका कड़वा फल उसे चखना पड़े।

किन्तु ऐसा करनेके लिए प्रातःकाल उठते ही अत्यन्त प्रेमसे चार-छः उक्तम भजनोंका पाठ करना चाहिये। ब्रह्मचारियोंकी सुविधाके लिए हम कुछ पद नीचे उद्धृत कर देते हैं:—

प्रातःस्मरणम्

प्रातः स्मरामि हृदि संस्कुरदात्मतत्त्वं सञ्चितसुखं परमहं सगतिं तुरीयम्
यत् स्वप्नजागरसुपुष्टमवैति नित्यं तद् ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः·
प्रातर्भजामि मनसो वचसामगम्यं वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण
यन्नेतिनेतिवचनैर्निगमा अवोचु—स्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरङ्गम्

(१)

हों हरि पतित-पावन सुने ।
 हों पतित तुम पतित-पावन दोऊ बानक बने ॥ १ ॥
 व्याध गनिका गज अजामिल स्वगति निगमनि भने ।
 और अधम अनेक तारे जात कापै गने ॥ २ ॥
 जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने ।
 दासतुलसी सरन आयो राखिये अपने ॥ ३ ॥
 —विनय-पत्रिका ।

(२)

मन पद्धितैहै अवसर चीते ।
 दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, वचन अरु हीते ॥ १ ॥
 सहस्राहु दसवद्दन आदि नृप, वचे न काल बलीते ।
 हम हम करि धन-धाम सँवारे, अन्त चले उठि रीते ॥ २ ॥
 सुत वनितादि जानि स्वारथ-रत, न करु नेह सबहीते ।
 अन्तहु तोहिं तजँगे, पामर ! तू न तजै अबहीते ॥ ३ ॥
 अब नाथहिं अनुरागु जागु जड, त्यागु दुरासा जीते ।
 दुम्हे न काम अगिनि तुलसी कहुँ, विषयभोग बहु धीते ॥ ४ ॥
 —विनय-पत्रिका ।

(३)

सेइ चरन सरोज सीतल, तजि विष्यै रस-पान ॥ १ ॥
 जानु जंघ त्रिभंग सुन्दर, कलित कंचन दंड ।
 काछिनी कटि पीत पट दुति, कमल केसर खंड ॥ २ ॥

मनु मराल प्रवाल छौना, किंकिनी कल राव ।
 नाभि हृद रोमावली अलि, चले सैन सुभाव ॥ ३ ॥
 कण्ठ मुक्ता माल मलयज, उर बनी बनमाल ।
 सुरसुरीके तीर मानो, लता स्याम तमाल ॥ ४ ॥
 बाहु पानि सरोज पल्लव, गहे मुख मृदु वैनु ।
 अति विराजत बदन विधुपर, सुरभि रञ्जित वेनु ॥ ५ ॥
 अहन अधर कपोल नासा, परम सुन्दर नैन ।
 चलित कुण्डल गंडमंडल, मनहु नितरत मैन ॥ ६ ॥
 कुटिल कच भ्रू तिलक रेखा, सीससिखि श्रीखण्ड ।
 मनु मदन धनु सर संधाने, देखि धन को दण्ड ॥ ७ ॥
 सूर श्रीगोपालकी छवि, हृषि भरि भरि लेत ।
 प्रानपतिकी निरखि सोभा, पलक परिति न देत ॥ ८ ॥

—सूरसागर ।

महात्मा सूरदामजी-रचित ऊपर का नख-सिख वर्णन सम्बन्धी
 पद ध्यानके लिए बड़ा उत्तम है ।

(४)

‘ तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी ।
 हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंजहारी ॥ १ ॥
 नाथ तू अनाथको, अनाथ कौन मोसो ?
 मो समान आरत नहिं, अरतहर तोसो ॥ २ ॥
 ब्रह्म तू हौं जीव, तू ठाकुर हौं चरो ।
 तात, मात, गुरु, सखा तू सब विधि हितू मेरो ॥ ३ ॥

तोहिं सोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै ।
ज्यों त्यों तुलसी कृष्णालु, चरन सरन पावै ॥ ४ ॥

विनय-पत्रिका ।

(५)

जिंय जघतें हरिते यिलगान्यो । तघतें देह-गेह निज जान्यो ॥
मायावस स्वरूप विसरायो । तेहि भ्रमते दासन दुख पायो ॥
पायो जो दासन दुसह दुख सुख लेस सपनेहु नहिं मिल्यो ।
भवसूल सोग अनेक जेहि तेहि पन्थ तू हठि हठि चल्यो ॥
वहु जोनि जनम जरा विपति मतिमन्द हरि जान्यो नहीं ।
श्रीराम यिनु विश्राम मूढ़ विचार लखि पायो नहीं ॥ १ ॥
आनेंद सिन्धु मध्य तब वासा । यिनु जाने कस मरसि पियासा ॥
मूर-भ्रम-वारि सत्य जिय जानो । तहुं तू मगन भयो सुख मानो ॥
तहुं मगन मज्जसि पान करि ब्रयकाग जल नाहीं जहाँ ॥
निज सहज अनुभव रूप तब खल भूलि अब आयो तहाँ ॥
निरमल निरथन निरविकार उदार सुख तैं परिहस्यो ।
निहकाज राज विहाइ नृप इव सपत कारागृह पखो ॥ २ ॥
तैं निज कर्म-डोरि गृद कीन्हीं । अपने करन गाँठि गहि दीन्ही ॥
ताते परवस पखो अभागे । ता फल गरभ-वास-दुख आगे ॥
आगे अनेक समूह संसृति छदर गत जान्यो सोऊ ।
सिर हेठ, ऊपर चरन सङ्कट थात नहिं पूछै कोऊ ॥
सोनित पुरीप जो मूत्र-मल कृमि कर्दमावृत सोवई ।
कोमल शरीर गंभीर वेदन, सीस धुनि धुनि रोवई ॥ ३ ॥

तू निज करम-जाल जहँ धेरो । श्रीहरि सङ्ग तज्यो नहिं तेरो ॥
बहु विधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हों । परम कृपालु ज्ञान तोहिं दीन्हों ॥

तोहिं दियो ज्ञान विवेक जनम अनेककी तत्र सुधि भई ।
तेहि ईसकी हौं सरन जाकी विषम माया शुन मई ॥
जेहि किये जीव-निकाय वस रसहोन दिन दिन अति नई ।
सो करै वेगि सँभार श्रीपति विष्टि महँ जेहि मति दई ॥४॥

पुनि वहु विधि गलानि जिय मानी । अब जग जाइ भजौचकपानी ॥
ऐसेहु करि विचार चुप साधी । प्रसव-पवन प्रेरेड अपराधी ॥

प्रेरेड जो परम प्रचण्ड मारुत कष्ट नाना तैं सह्यो ।
सो ध्यान ध्यान विराग अनुभव जातना पावक दह्यो ॥
अति खेद व्याकुल अत्प वल छिन एक बोलि न आवई ।
तब शीघ्र कष्ट न जान कोउ सबलोग हरषित गावई ॥५॥

बाल दसा जेते दुख पाये । अति असीम नहिं जाहिं गनाये ॥
छुधा व्याधि बाधा भइ भारी । वेदन नहिं जानै महतारी ॥

जननी न जानै पीर सो, केहि हेतु सिसु रोदन करै ।
सोइ करै विविध उपाय जातैं अधिक तुव छाती जरै ॥
कौमार सैसव अहु किसोर अपार अघ को कहि सकै ।
वितरेक तोहि निरदय महाखल आन कहु को कहि सकै ॥६॥

जौबन जुबती सँग रँगरात्यो । तत्र तू महा मोद मदमात्यो ॥
ताते तजी धरम मरजादा । विसरे तब सब प्रथम विषादा ॥

विसरे विषाद निकाय संकट समुझि नहिं काटत हियो ।
फिरि गर्भ-गत-आवर्त संसति चक्र जेहिं होइ सोइ कियो ॥

कृमि भस्म-विट-परिताम तनु तेहि लागि जग वैती भयो ।
 परदार-परधन-द्रोह पर संसार दाढ़े नित नयो ॥५॥
 देखत ही शायी विरुद्धार्द्दि । जो त सपनेहुँ नाहिं बुलार्दि ॥
 ताके गुन कहु कहे न जाहीं । सो अब प्रगट देखु मन माहीं ॥
 सो प्रगट तनु जरजर जरावस व्याधि सूल सतावर्द्दि ।
 सिर कम्प्य इन्द्रिय-सक्षि प्रतिदृत वचन काहु न भावर्द्दि ॥
 गृहपालहू तें अतिनिरादर खान-पान न पावर्द्दि ।
 ऐसिहु दसा न विराग तहुँ तृस्ना तरङ्ग बढ़ावर्द्दि ॥
 कहि को सकै महाभव तेरे । जन्म एकके कहुक गनेरे ॥
 खानि चारि सन्तत अवगाहीं । अजहुँ न करु विचार मन माहीं ॥
 अजहुँ विचार विकार तजि भजु रामजन सुखदायकं ।
 भवसिन्धु दुस्तर जलरथं भजु चक्रधर सुरनायकं ॥
 विनु हेतु करुनाकर उदार अपार माया-तारने ।
 कैवल्य पति जगपति रमापति प्रानपति गति कारने ॥९॥
 रघुपति भक्ति सुजभ सुखकारी । सो ब्रयताप-सोक-भयहारी ॥
 विनु सतसंग भक्ति नहिं होई । ते तव मिलै द्रवै जब सोई ॥
 जब द्रवै दीनदयालु राघव साधु संगति पाहये ।
 जेहि दरस परस समागमादिक पापरासि नसाहये ॥
 जिनके मिलं द्रुख-सुख-समान अमानतादिक गुन भये ।
 मद-मोह-लोभ-विषाद-क्रोध सुबोधते सहजहिं गये ॥१०॥
 सेवत साधु द्वैत भय भागै । श्रीरघुवीर चरन लौ लागै ॥
 देह जनित विकार सब त्यागै । तब फिरि निज स्वरूप अनुरागै ॥

अनुरागसो निज रूप जो जगते विलच्छन देखिये ।
 सन्तोस-सम सीतल सदा हम देहवन्त न लेखिये ॥
 निरमल निरामय एकरस तेहि हर्ष-सोक न व्यापई ।
 ब्रैलोक-पावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई ॥११॥
 जो तेहि पंथ चलै मन लाई । तौ हरि काहेन होईं सहाई ॥
 जो मारग स्तुति साधु दिखावै । तेहि पथ चलत सबै सुख पावै ॥
 पावै सदा सुख हरि कृपा संसार-आसा तजि रहै ।
 सपनेहुँ नहीं दुख द्वैत दरसन वात कोटिक को कहै ॥
 द्विज देव गुरु हरि सन्त विनु संसार-पार न पाइये ।
 यह जानि तुलसीदास न्रासहरन रमापति गाइये ॥१२॥

—विनय-पत्रिका ।

इस प्रकारके उत्तमोत्तम भक्तिपूर्ण पदोंका पाठ करके उच्च संकल्प किया करो । देखोगे कि संकल्प ही करते-करते तुममें दैवी तेज प्रवेश कर जायगा । किन्तु बिना संकल्प किये कोई भी काम आरम्भ नहीं करना चाहिये । लिखा है:—

सङ्कल्पये न बिना राजन् यर्त्तिचित्कुरुते नरः ।
 फलस्याइत्याल्पकं तस्त धर्मस्याधक्षयंभवेत् ॥

—पश्च-पुराण ।

अर्थात् राजन् ! संकल्पसे बिना मनुष्य जो कुछ करता है, उसका फल बहुत ही कम होता है और उसके धर्मका आधा भाग नष्ट हो जाता है । इसीसे आर्य-धर्ममें प्रत्येक शुभकर्मके प्रारम्भमें संकल्प करनेकी विधि है । क्योंकि जो काम संकल्प के बिना किया

जाता है, वह यदुधा पूर्ण नहीं होता। कारण यह कि ऐसे कामोंमें मनुष्य ढिलाई कर जाता है और करते करते बोच ही में छोड़ भी देता है। इसलिए ब्रह्मचर्य धारण करनेके लिए भी दृढ़ होकर इस प्रकार संकल्प करना बहुत ही आवश्यक है:—

हे प्रभो ! आजसे मैं वीर्यनक्षा करनेमें दक्षिण्ठ रहूँगा। व्यभिचारसे सदा घृणा करूँगा। मैं परायी छोको बुरा दृष्टिसे न देखूँगा। किसीका अहित न करूँगा। सदा प्रसन्नचित्त रहूँगा और प्रिय वचन बोलूँगा। सत्यका पालन करूँगा। मैं धर्मको छोड़कर और किसीसे न डरूँगा। ऐ परब्रह्म परमात्मन् ! एकमात्र तू ही मेरा सद्गायक है।

घाद तीचे लिखी शातोंका चिन्तन करते रहना चाहिये—

१—ईश्वर सर्वत्र है; मुझमें और ईश्वरमें भेद नहीं है। समूचा जगत् ब्रह्ममय है। “अहंब्रह्मास्मि” यही मेरा स्वरूप है।

२—ईश्वर सत् स्वरूप, वित् स्वरूप और आत्मन् स्वरूप है, इसीसे उसका नाम ‘सञ्चिशनन्द’ है। वह निःसंग, अविनाशी और निष्कलंक है। वह सदा एकरस रहनेवाला है।

३—ईश्वर वीर्यवान्, सर्वशक्तिमान् और सीमारहित है। मेरा स्वरूप भी वही है। मायाके आवरणसे अवतक मैं अपनेको भूला हुआ था। किन्तु अब उसका पर्दा अपने आपही हटता जा रहा है।

४—मैं जो चाहूँ सो कर सकता हूँ, मेरी अवाध गतिको कोई भी नहीं रोक सकता।

५—अब मैं अपने वीर्यको किसी प्रकार भी न गिरने दूँगा।

स्वप्नमें भी मेरा वीर्य नहीं गिरने पावेगा। मैं वीर्यकी रक्षाके लिए अपने मनमें किसी प्रकारकी भी दुरी भावना उत्पन्न ही न होने दूँगा।

६—अब क्रमशः मेरी वृत्तियां पवित्र होती जा रही हैं। मैं अब ब्रह्मचर्यका पालन कर रहा हूँ, अब मेरे उद्धारमें रचभर भी सन्देह नहीं है।

७—हे नाथ ! मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरे हो।
“अब करुनाकर कीजिय सोई। जेहि आचरन मोर हित होई ॥”

॥ रहन-सहन ॥

ब्रह्मचारीको अपने प्रत्येक काम और विचारमें पूरी सावधानी, रखनी चाहिए। हर कामका नियमबद्ध होना ब्रह्मचारीके लिए बहुत जरूरी है। यदि कोई काम करना हो तो पहले सोच लेना चाहिये कि इस कामका प्रभाव ब्रह्मचर्य पर क्या पड़ेगा। यदि चुरा प्रभाव पड़नेकी सम्भावना हो तो उस कामको स्थगित कर देना चित है। यदि कोई विचार मनमें उत्पन्न हो तो सोचना चाहिये कि इससे मनपर चुरा असर तो नहीं पड़ेगा। ऐसे विचारों-को कभी भी मनमें न लाना चाहिये, जिनसे मन दूषित हो। हर समय इन बातोंका ध्यान रखना ब्रह्मचर्यके लिए अत्यन्त आवश्यक है। यहाँ तक कि कोई शब्द मुखसे निकालनेके पहले ब्रह्मचारीको चसका हानि-लाभ सोच लेना चित है।

जिस कामसे या वचनसे अथवा विचारसे किसीका अथवा

अपना अहित हो, उसे त्यागे रहनेमें ही कल्याण है। बहुत काम ऐसे होते हैं, जो यिना उद्देश्यके ही मनुष्यसे हो जाते हैं। किन्तु ब्रह्मचारीको ऐसा काम करके अपनी शक्तिका दुरुपयोग कदापि न करना चाहिये; उसका प्रत्येक काम सार्थक होना जरूरी है, निर्थक नहीं।

सोना और जागना भी ब्रह्मचारीका नियमित समय पर होना दिवित है। जो ब्रह्मचारी बतना चाहें, तथा आरोग्य रहकर सुखी रहना चाहें, उन्हें जल्दी सोने और जागनेका अभ्यास अवश्य करना चाहिये। रातके दस बजे तक सो जाना चाहिये और भोरमें चार बजे तक उठ जाना चाहिये। क्योंकि सबैरे उठनेसे बहुत लाभ होता है, यह आगे चलकर बतलाया जायगा। इसी प्रकार भोजनमें सदा विचार रखना चाहिये, उठने-बैठनेमें भी भलौं-दुरेका ज्ञान रखना चाहिये, संगति पर ध्यान रखना चाहिये, अपनी उन्नति और अवनतिका सदा ध्यान रखना चाहिये, आदि।

① सबैरे उठनेके लाभ ①

① ① ① ① ① ① ① ① ① ①

सबैरे उठनेसे बुद्धि स्वच्छ रहती है, आलस्य दूर होता है, मानसमें उत्तम विचार होते हैं। स्वप्नदोष भी प्रायः रातके अन्तिम पहरमें ही हुआ करता है। सबैरे उठनेसे स्वप्नदोषका होना बन्द हो जाता है। जो आदमी सबैरेका अमूल्य समय नष्ट कर देता है, उसका समूचा दिन ही व्यर्थ चला जाता है। जिस प्रकार मनुष्य-जीवनकी धार्यावस्था जड़ है, उसी प्रकार दिनकी यह धार्यावस्था

है और मूल है। प्राचीन समयके लोग सबेरे उठनेके पूरे अभ्यासी होते थे। क्योंकि इस समयकी वायु अत्यन्त शुद्ध और लाभदायक होती है। मानसिक शक्तिको घटाने के लिए प्रातःकालका उठना अत्यन्त प्रयोजनीय है। जो लोग इस समय सोते रहते हैं, वे अत्पायु, आलसी, दरिद्र, हठी और दुरे विचारवाले हो जाते हैं।

हमारे शास्त्रकारोंने प्रातःकालके समयको 'असृत वेळा' कहा है। रात-भरके विश्रामके कारण इस समय मनुष्यकी दुद्धि स्वाभाविक हो शान्त, गम्भीर और पवित्र रहती है। शूपिलोग इस समय उठकर सबसे पहले स्थिर-वित्तसे परमात्माका ध्यान करते थे, यही कारण है कि इतने दिन वीत जानेपर भी अभीतक समूचे संसारमें उनकी कीर्ति और यशका गुण गाया जा रहा है। इसलिए ब्रह्मचारीको उचित है कि वह काम-क्रोधादि शत्रुओंको परास्त करनेके लिए इस अमूल्य समयको सोनेमें न वितावे। कहावत है, 'जो सोया सो खोया।' इस समय उठकर परमात्माका ध्यान करना चाहिये और शान्तिलाभ करना चाहिये। सबेरे उठनेका अभ्यास डालनेसे इसके गुणोंका पता अपने-आप ही चल जाता है।

शुद्धवायु और शधन-विधि

जहाँ तक हो सके, खुली हवा में सोना और रहना चाहिये। क्योंकि वायुमें बहुत बड़ी संजीवनी शक्ति है। इसके बिना कोई भी जीव नहीं जी सकता। बिना आहारके मनुष्य दो-चार दिन

रह सकता है, जलके विना भी कुछ समय तक शरीर रह सकता है, किन्तु हवाके विना तो मनुष्य दो-चार मिनटमें ही मर जाता है। सोचिये, साँस बन्द करके मनुष्य कितनी देर तक जी सकता है ? इसलिए जो हवा जीवनके लिए, इतनी उपयोगी है, उसका शुद्ध होना बड़ा जरूरी है। जहाँ शुद्ध हवासे मनुष्यका बहुत बड़ा लाभ होता है, वहाँ गन्दी और विकारयुक्त हवासे उसकी मृत्यु भी हो जाती है। नोचे लिखी बातोंपर पूर्ण रीतिमें ध्यान देना ब्रह्मचारीका परम कर्तव्य हैः—

१—सोनेका कमरा हवादार और प्रकाश-युक्त होना जरूरी है। कमरा साफ रहना चाहिये।

२—ओढ़ने और विछाने तथा अन्यान्य व्यवहारोंमें आनेवाले वस्त्र विलकुल साफ रहें। जो वस्त्र शरीर पर रहे, उसे प्रति दिन धोकर सुखाना चाहिये। जो वस्त्र रुईदार हो, धोनेके लायक न हो, उसे धूपमें रखकर उसका विकार निकाल देना चाहिये। क्योंकि सूर्यके प्रकाशसे रोगके जन्तु मर जाते हैं और कपड़ेमें बदबू पैदा नहीं होती।

३—जाड़ेके दिनोंमें या और किसी मौसिममें मुँह ढँककर कभी न सोना चाहिये। क्योंकि नाक, मुख और समूचे शरीरसे हर वक्त दूषित हवा निकलती रहती है, और मुख ढँका रहनेसे मनुष्यके भीतर बही दूषित हवा बार-बार जाकर रोग पैदा करती है।

४—ब्रह्मचारीको छः घरटेसे अधिक नहीं सोना चाहिये। सोते

समय दीपकको वुझा देना चाहिये, क्योंकि जलते हुए दीपकसे भी हवा दूषित होती है। सोनेके पहले थोड़ासा जल पीलेना और पेशाब कर लेना चाहिये। क्योंकि मल-मूत्रके वेगको रोकनेसे स्वप्न होनेकी आशंका रहती है, साथ ही पेटकी गड़वड़ीसे वीमानियाँ भी पैदा हो जाती हैं।

५—नींद आनेसे पहले भी ईश्वरका स्मरण करके अच्छे विचारोंसे युक्त होना उचित है। ऐसा करनेसे रातमें बुरे स्वप्न नहीं दिखलायी पड़ते। एक बात यह भी है कि ईश्वरका ध्यान करनेसे निद्रा बहुत जल्द आ जाती है।

६—प्रति दिन सधेरे शुद्ध वायुमें टहलना चाहिये। किन्तु टेक छुड़ानेके लिए नहीं, बल्कि अच्छी तरहसे। कमसे कम दो-चार मीलका चक्र तो अवश्य ही लगाना चाहिए। इससे एक तो कसरत हो जाती है और दूसरे शुद्ध वायुसे शरीरका आलस्य दूर हो जाता है। बदनमें फुर्ती रहती है। काम करनेमें जी खूब लगता है। भूख अच्छी लगती है; शरीरमें ताकत आती है; बहुतसे विकार बिना दवा-दाख़के ही समूल नष्ट हो जाते हैं।

६. मल-मूत्रका त्याग

सूर्योदयसे पहले मल-मूत्रका त्याग कर डालना चाहिये। प्रातः और सायंकाल दो बार शौच जाना उचित है। कितने ही लोग दो बारसे अधिक और कितने ही मनुष्य केवल एक बार शौच जाने की आदत डालते हैं। किन्तु ये दोनों आदर्ते ठीक नहीं हैं।

जहाँ तक हो सके, खुले मैदान में शौच होना चाहिये । मल-मूत्र की हाजत होनेपर उसे कभी न रोको । क्योंकि सारे रोगों की जड़ यही है । आलस्य के कारण जो लोग मल-मूत्र के वेग को रोक देते हैं, उन लोगों का स्वास्थ्य बहुत जल्द खराब हो जाता है ।

मल,वद्धता से वीर्य का नाश होता है । वीर्य का नाश होने से शरीर कमजोर पड़ जाता है और फिर मन्दाग्नि हो जाती है । जब अग्नि मन्द पड़ जाती है, तब पाखाना साफ नहीं होता । मूर्ख लोग कहते हैं कि ढाट लगने से पाखाना अपने-आप ही होगा । ऐसा समझकर वे बुद्ध डबल खूराक चढ़ा देते हैं । नतीजा यह होता है कि अन्न पचाने की शक्ति तो जठराग्नि में रहती नहीं वह भीतर-ही-भीतर सड़कर अत्यन्त बदबूदार और जहरीला बनजाता है । सोचने की बात है कि जिस मल के बाहर निकालने पर उस की बदबू से दस घुटने लगता है, उसके भीतर रहने से मनुष्य कैसे सुखी और आरोग्य रह सकता है ?

मलंको रोकने से भीतर की अपान-वायु विगड़कर मैले को ऊपर की ओर चढ़ाने लगती है, जिससे वह खराब मैला फिर जठराग्नि में जाकर पचने लगता है और उससे सारे शरीर का खून गन्दा हो जाता है । लिखा है कि:—

“सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता भलाः ।”

अर्थात् संसार में जितने रोग हैं, सब मल के कुपित होने से ही होते हैं । इसलिए मल-मूत्र त्यागपर ब्रह्मचारी को पूरा ध्यान रखना चाहिये । हमेशा ठीक समय पर सब कामों को छोड़कर

यह काम कर डालना उचित है। यदि कभी निश्चित समय पर पाखाने की हाजत न मालूम हो, तब भी शौच के लिए जरूर जाना चाहिये। इससे चाहे पाखाना न भी हो, उसकी गर्भा असर नहीं करती किन्तु जो लोग ऐसा नहीं करते, हाजत की बाट जोहते हुए वैठे रह जाते हैं, उनकी आदत बिगड़ जाती है और मलकी गर्भा से आँखों की ज्योति कम हो जाती है, भोजन की रुचि नष्ट हो जाती है। सिरमें पीड़ा पैदा हो जाती है, ठीक से भूख नहीं लगती, शरीर आलसी हो जाता है और बल-चीर्य भी ज्ञीण होने लगता है।

इस प्रकार नाना प्रकार के रोगों का घर बन जाने वाले शरीर से न तो ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन हो सकता है और न वीर्यकी रक्षा ही हो सकती है। क्योंकि रोगी मनुष्य कभी भी ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। इसलिए पेटकी शुद्धिके लिए ब्रह्मचारीको उचिन रीति से (आगे बतलाये हुए नियम के अनुसार) भोजन करना चाहिये और मल-मूत्र के बेग को भूलकर भी नहीं रोकना चाहिये। मैलेकी गर्भासे भीतरकी इन्द्रियों क्षुब्ध हो जाती हैं और इन्द्रियोंके क्षुब्ध होने पर मनुष्य रोगी होनेपर भी कामी बन जाता है। इन्द्रियोंमें अस्वभाविक उत्तेजना का आना इन्हीं अनधौरों का परिणाम है।

इसलिए मल-मूत्रको या अपान-वायु को किसी काममें फँस कर अथवा लज्जा के कारण, जाड़े के कारण या और किसी कारणसे रोकना अपने स्वास्थ्यको चौपट करना है। ये वातें ब्रह्म-

चर्य के लिए बड़ी हानि पहुँचाने वाली हैं। अतः ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्यनक्षा के लिए सुव्रह-शाम दो बार नियमित समय पर मल-मूत्र का त्याग करना परम आवश्यक है। किन्तु पखाना होनेके लिए कांखना ठीक नहीं। क्योंकि इससे वोर्य के चाहर निकल पड़ने की सम्भावना रहती है।

कोष्ठ-शुद्धि के उपाय

हम पहले ही कह आये हैं कि शरीर में जितनी वीमारियाँ पैदा होती हैं, सब पेट को गड़वड़ी से ही होती हैं। इसलिए ब्रह्म-चारीकों पेट की सफाई पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। यदि मनुष्य थोड़ी सी सावधानी रखे, तो वह जन्म भर निरोग रह सकता है और कभी भी उसे पेट की शिकायत नहीं हो सकती। इसके लिए नीचे लिखे उपाय विशेष उपयोगी हैं:—

१—अल्प भोजन करना चाहिये। शक्ति से अधिक भोजन करने से पेट में गड़बड़ी पैदा हो जाती है, क्योंकि जठराग्नि पर अधिक भार पड़ने से वह अन्न को पूर्णरीति से नहीं पचा पाती, इसलिए न पचा हुआ अन्न आमाशय में चला जाता है और कच्ची शिकायत सदा बती रहती है। अन्ततः भयानक रोगों का आक्रमण होता है।

२—यदि पेट में कुछ कच्चा मालूम हो तो सबैरे नमक मिले हुए पानी को गरम करके थोड़ासा पी लेना चाहिये और फिर चारपाई पर लेटकर पेट को अच्छी तरह से दबाकर हिलाना

चाहिये। बाद पाखाने जाने से दस्त साफ होता है। इस प्रकार ७-८ दिन तक करने से कच्चे दूर हो जाता है। कच्चे दूर होने पर इसे छोड़ देना उचित है।

३—प्रति दिन सबैरे आठ घूंट जल पीने की धारूत डालनी चाहिये। बाद पेट को हिला-झुलाकर शौच जाना उचित है। ऐसा नियमित रूप से करने पर कच्चे की शिकायत कभी होती ही नहीं।

४—दिन में दो-तीन बार पेट को हिलाना चाहिये। इसकी विधि यह है कि दोनों हाथों से पेट को एक बार बार्या और से दोहनी और को दबाना चाहिये और फिर इसी प्रकार दोहनी और से बार्या और को दबाना चाहिये। इस प्रकार एक दफे में ५-६ बार करने से पेट में कोई शिकायत नहीं रहती। किन्तु यह क्रिया भोजन करने से दो घंटे के बाद करनी चाहिये।

गुदा-शुद्धि

गुदा और मुत्रेन्द्रिय को शुद्ध रखना बहुत जरूरी है। शौच हो चुकनेके बाद गुदा-द्वारको अच्छी तरहसे धोना चाहिये। ऐसा करनेसे एक तो मल साफ होकर गुदा-द्वार शुद्ध हो जाता है, दूसरे इससे वीर्य में शीतलता आती है, क्योंकि वीर्य-प्रवाहिनी नाड़ी गुदा-द्वार से होकर ही आयी हुई है। किन्तु गुदा-द्वार को शुद्ध करनेके पहले लिंगेन्द्रियको अच्छी तरह से धो डालना उचित है। मूत्रेन्द्रिय को गन्दा रखना उचित नहीं। इसके धोनेसे

ब्रह्मचारी अधिक घर्षण न करे। क्योंकि अधिक घर्षण से इन्द्रिय में उत्तेजना पैदा होती है और वीर्य गिरजाने की आशंका रहती है। मूत्रेन्द्रिय के अग्रभाग पर ठंडे पानी की धार छोड़नी चाहिये। क्योंकि इस इन्द्रिय में शरीर की तमाम नसें इकट्ठी हुई रहती हैं। जिस प्रकार पैड़की जड़को सौंचनेसे समूचा पैड़ हरा-भरा रहता है, उसी प्रकार तमाम नसोंकी जड़ रूप मूत्रेन्द्रियको ठंडे पानीकी धार से शीतल करना समूचे शरीरके लिए गुणकारी है।

इससे मनकी चंचलता नष्ट हो जाती है। वीर्यमें स्तम्भन शक्ति आती है। इसलिए इस क्रियाको कभी भी भूलना ठीक नहीं। यह ब्रह्मचर्य-पालनकी खास क्रियाओंमें है। किन्तु इस समय मनमें अधिक दृढ़ता, पवित्रता और उच्च विचारोंके लानेकी जरूरत है। जो मनुष्य ऐसा नहीं करता, उसके मनमें इन्द्रिय-स्वच्छताके समय ऐसे बुरे विचार उत्पन्न हो जाते हैं, जिसका परिणाम है वीर्यनाश।

हमारे महर्षियोंने पेशाव करनेके बत्त जल लेकर जानेकी जो आज्ञा दी है, उसका क्या कारण है? यही कि एक तो शुद्धता रहती है, पेशाव के बाद इन्द्रियको धो देनेसे वस्त्रमें पेशाव लंगने की सम्भावना नहीं रहती, दूसरे ऐसा करनेसे दिनभरमें कई बार इन्द्रिय पर शीतल जल पड़ जाता है, जिससे स्वास्थ्यके लिए भी लाभ पहुँचता है और वीर्यनाश होनेकी सम्भावना मिट जाती है।

किन्तु दुःखकी बात है कि आजकलके पश्चिमी सभ्यतामें रंगे हुए अर्द्ध-शिक्षित भारतीय नवयुवक, बड़े-बड़े मेधावी ऋषियोंके

बतलाये हुए नियमोंको अपनी मूर्खताके कारण ढोंग समझते हैं। वे कहते हैं कि ये सब हिन्दूधर्मकी पोष लीलायें हैं, इन्हीं वातोंसे तो हिन्दूसमाज चौपट हो गया। यदि हमारे देशवासी अपने धर्म-ग्रन्थोंमें बतलायी हुई वातोंको श्रद्धाके साथ पढ़ें और उनके मर्म समझनेकी चेष्टा करें तो उन्हें पता लगे कि मुनियोंको प्रत्येक वात में कितनी उच्चता भरी हुई है और कितना सार है। किन्तु देशके दुर्भाग्यसे हमारा नवयुवक-सम्प्रदाय इधर ध्यान ही नहीं देता। उसे तो केवल अपने धर्मकी हँसी उड़ानेमें ही अधिक आनन्द मिलता है। हे प्रभो ! वह दिन कब आवेगा जब हमारे देशके नवयुवकोंका अज्ञानान्धकार दूर होकर उन्हें ज्ञान-हृषि प्राप्त होगी ?

ॐ सुख-शुद्धि और स्नान ॐ ॐ शुद्धिं शुद्धिं शुद्धिं शुद्धिं ॐ

सुखको प्रतिदिन अच्छी तरहसे साफ करना चाहिये। बहुतसे दन्तधावन करनेमें इतनी शीघ्रता करते हैं कि दाँतोंकी मैल ज्यों-की-त्यों बनी ही रह जाती है और वे कर्तव्यसे बरी हो जाते हैं। दन्तधावन करना मानो ऐसे लोगोंके लिए जवालसा मालूम होता है। वे समझते हैं कि यह भी एक धार्मिक काम है, जरासा करके टेक छुड़ा देना चाहिये। किन्तु वे नहीं जानते कि यह स्वास्थ्य की रक्षा के लिए है। इसमें शीघ्रता करने से बड़ा कष्ट होता है और कुछ दिनों में कितने ही अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष रोग आ घेरते मूर्खलोग धर्म समझकर तो कुछ काम करते भी हैं, किन्तु तन्दुरुस्तीके लिए एक भी काम नहीं करना चाहते। वे यह नहीं

समझते कि तन्दुरुस्तीको ठीक रखनेके लिए जितने काम किये-जाते हैं, उन सभोंका समावेश भी धर्म-हीके अन्तर्गत हो जाता है। क्योंकि शरीर ही तो मुख्य चीज़ है। जब शरीर हो न रहेगा तब धर्म होगा किससे ? कौन धर्म करेगा ?

अतएव ब्रह्मचारीको मुखकी शुद्धि रखनी चाहिये। जो लोग मुखकी शुद्धिपर ध्यान नहीं देते, उनके दाँतोंमें कृमि पैदा हो जाते हैं और असह्य पीड़ा होने लगती है। दूसरी बात यह भी है कि जो कुछ आहार शरीरको दिया जाता है, वह सब मुख-द्वारसे होकर ही भीतर जाता है। इसलिए मुख गन्दा रहनेसे मुखमें जाते ही शुद्ध आहार भी दूषित हो जाता है। परिणाम यह होता है कि मनुष्य तो अपनी समझसे शुद्ध आहार करता है, पर वहाँ जठराग्निको दूषित और विपैले पदार्थ मिलते हैं। क्योंकि दाँतोंमें मैल वैठनेसे एक प्रकारका दुर्गन्ध-युक्त विष पैदा हो जाता है और इस प्रकारकी असावधानीका कुफल समूचे शरीर को भोगना पड़ता है।

मुखकी सफाई करनेके बाद देहकी सफाई करनेके लिए स्नान करना चाहिये। ये दोनों काम सूर्योदय से पहले कर डालना चाहिये। ब्रह्मचारीके लिए कायिक, वाचिक और मानसिक शुद्धि-की ओर ध्यान रखना विशेष प्रयोजनीय है। गन्दे शरीर से मन भी गन्दा रहता है। गन्दगी रोगका घर है। इसलिए शरीरको शुद्ध रखनेके लिए प्रतिदिन सबैरे स्नान करना जरूरी है। इसमें शरीरके सब छिद्र खुल जाते हैं। छिद्रोंका खुला रहना स्वास्थ्यके

लिए बड़ा आवश्यक है। क्योंकि मनुष्य के खल नाक से ही सौंस नहीं लेता, बल्कि शरीर के रोम-कूपों द्वारा भी वह सौंस लिया करता है। इसलिए गन्दगी रखने से ये ढूँक जाते हैं और उचित रीति से इनके द्वारा शरीर का काम नहीं हो पाता। इन छिद्रों के बन्द रहने से नाक-मुख के खुले रहने पर भी हम जीवित नहीं रह सकते।

इसलिए प्रत्येक खो-पुरुप को चाहिये कि वह शरीर की स्वच्छता में कभी आलस्य न करें और प्रतिदिन धर्षण-स्नान किया करें। धर्षण-स्नान कहते हैं, खूब मल-मल कर स्नान करने को। धर्षण-स्नान से त्वचा के सब छिद्र खुल जाते हैं और भीतर के दूषित पदार्थ पसीने के रूप में बड़ी आसानी से बाहर निकल जाते हैं। इसी प्रकार बाहर की शुद्ध हवा भी भीतर जाती है। धर्षण-स्नान से मनुष्य तेजस्वी, आरोग्य, विकार-रहित और वीर्य-रक्षक बन जाता है। सब जगह पवित्रता ही जीवन है और अपवित्रता ही मरण है। हमलोग वहुधा स्नान करने में जलदी वाजी किया करते हैं; एक-दो लोटा पानी शरीर पर डाला, कहीं शरीर भींगा और कहीं नहीं, हाथ लगाना या शरीर को मलना तो मानो पाप है, बस स्नान हो गया। किन्तु यह बात बहुत बुरी है। यदि सच पूछा जाय तो इसे स्नान कहा ही नहीं जा सकता। क्योंकि ऐसे स्नान से तो कोई लाभ नहीं होता, बल्कि कुछ-न-कुछ हानि ही होती है। कारण यह कि भीतरी गर्भ ऊपर आ जाती है और उसकी शान्ति नहीं होती, अतः हानि पहुँचाती है। जबतक स्नान करने से शरीर में का

ज्ञाहर न निकले जाय, तबतक उसे स्नान कहना ही व्यर्थ है। इसलिए ब्रह्मचारीको खूब रगड़कर शरीरके प्रत्येक अँगको साफ करके स्नान करना चाहिये।

जाड़े और घरसातमें चाहे कम समयतक स्नान करे, पर गर्भीके दिनोंमें आधघटे से कम स्नान नहीं करना चाहिये। इतनी देरतक स्नान करनेसे मस्तिष्क ठंडा पड़ जाता है। जिन लोगोंको स्वप्नदोप होता हो, उन्हें तो इसी प्रकार शामके बक्त भी नहाना चाहिये। स्नान हमेशा ठंडे पानीसे करना विशेष लाभदायक है। गर्भीके दिनोंमें प्रत्येक छी-पुरुषके लिए दोनों बक्तका नहाना बड़ा लाभदायक है। जाड़ेके दिनोंमें भी ठण्डे पानीसे ही नहाना अच्छा है। जो लोग इतनी सर्दी न सहन कर सकें, उन्हें गरम पानीसे नहाना उचित है; किन्तु ऐसे लोगोंको भी सिरपर ठण्डा पानी ही छोड़ना चाहिये। कारण यह कि मस्तकमें शरीरके सब अंगोंसे बहुत अधिक गर्भ रहती है। अतः गरम पानी डालनेसे मस्तिष्कमें तरावट नहीं आती, उसकी गर्भी बनी ही रह जाती है।

नहानेके लिए स्वच्छ जलवाली नदी विशेष उत्तम है। यदि नदीमें स्नान करना सुलभ न हो, तो कुएँके ताजे पानीसे स्नान करना चाहिये। कूप-जल सब ऋतुओंमें नहानेके योग्य रहता है। क्योंकि यह जल जाड़ेमें गर्भ और गर्भीमें शीतल रहता है। स्नानमें हाथसे शरीरको रगड़ना विशेष उपकारी है। कारण यहकि इससे शरीरमें एक प्रकारकी विजली पैदा होती है। इसलिए सब अंगोंको विजलीकी शक्ति देनेके लिए प्रत्येक अंगको खूब रगड़ना चाहिये।

जो अंग नहीं रगड़ा जाता, वह कमज़ोर पड़ जाता है। इसी प्रकार पेटको भी खूब रगड़ना उचित है। इससे कठज नहीं होता और पेटमें कभी कड़ापन नहीं आता।

कभी-कभी सावुन और गरम पानीसे स्नान करते रहना बड़ा ही स्वास्थ्य-प्रद है। क्योंकि इससे त्वचायें खूब साफ रहती हैं। किन्तु प्रतिदिन गरम पानीसे नहाना ब्रह्मचर्य के लिए हानिकारक है। वास्तवमें यह अप्राकृतिक स्नान है। इस प्रकारके स्नानमें भनुष्य कमज़ोर, नाजुक तथा विषयी बन जाता है। यदि नदीका नहाना सुगम हो तो प्रतिदिन नदी में स्नान करना चाहिये। नदी-स्नानमें एक पन्थ दो काज हैं। स्नान भी हो जाता है और तैरनेसे कसरत भी हो जाती है।

तैरनेमें बहुतसे गुण हैं। तैरनेसे पूरी कसरत हो जाती है और सब अगां पर काफी जोर पड़ने कारण शरीर पुष्ट हो जाता है, फेफड़े शुद्ध और बलवान होते हैं। शरीरमें फुर्ती आजाती है। उत्साह बहुत बढ़ जाता है इससे पाचनक्रिया भी बढ़ जाती है। किन्तु यह स्मरण रहे कि स्नान के बाद तुरन्त भोजन करना बड़ा हानिकारक है। क्योंकि इससे पाचनक्रिया बिगड़ जाती है और शरीर-स्थित पित्त कुपित हो जाता है। इसलिए ब्रह्मचारियों को चाहिये कि वे स्नान करनेके बाद तुरन्त ही न तो भोजन ही करें और न भोजनके बाद तुरन्त स्नान ही करें। ये दोनों ही बातें अत्यन्त हानिकारक हैं। स्नान करनेके कमसे कम डेढ़ या दो घण्टे के बाद भोजन करना तथा भोजनके दो-तीन घण्टे बाद स्नान

करना हितकर है। पर सबसे अच्छा तो यह हो कि स्नानके बाद ही भोजन करनेकी आदत डालनी चाहिये, भोजनके बाद स्नान करना धिलकुल भदा, अस्वाभाविक और उतना लाभदायक भी नहीं है जितना कि होना चाहिये।

इस प्रकार अच्छी तरहसे स्नान कर चुकने के बाद सूखे तौलियेसे शरीर को भलीभाँति पोँछ डालना चाहिये। बाद सूखा वस्त्र पहन लेना चाहिये। ऊपर कही गयी रीति से प्रति दिन स्नान करनेवाले मनुष्य सदा आरोग्य प्रसन्न चित्त और पवित्र रहते हैं। महीने दो महीने तक उक्त रीतिसे स्नान करनेवालोंको अपने आपही अनुभव हो सकता है कि इस प्रकारके स्नानसे वया लाभ हैं। नदीके बाद तालाबका स्नान भी अच्छा है, पर अधिकांश स्थानोंके तालाब बहुत गन्दे होते हैं, इसलिए उनमें स्नान करना हानिकारक है। ऐसे तालाबोंके स्नानसे कुँएँके पानीसे स्नान करना ही अच्छा है। क्योंकि स्नान करनेके लिए बहुत शुद्ध जल होना चाहिये। जिन तालाबोंका पानी गन्दा रहता हो, जो तालाब वस्तीके समीप हों, उनमें भूलकर भी स्नान नहीं करना चाहिये।

आहार

आहारसे ब्रह्मचर्यका बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। आहार ही शरीरका सर्वस्त्र है। शरीरको जैसा आहार दिया जाता है वैसे ही उसके अंग-प्रत्यंग हो जाते हैं। किन्तु आहार यानी भोजनके

महत्वको सब लोग नहीं जानते। यही कारण है कि ऐसे लोभ सदा दुखी रहते हैं। ब्रह्मचारियोंको आहारपर पूरा ध्यान देना चाहिये। आहार सात्त्विक, राजस और तमाम भेदसे तीन प्रकारका होता है। आहारसे आयु, बल-वीर्य, सुख और प्रीतिकी वृद्धि होती है। सात्त्विक आहारसे वृद्धि सात्त्विकी होती है, राजसिकसे वृद्धि राजसी और तामसिक आहारसे वृद्धि तामसी होती है। इसलिए ब्रह्मचारीको सदा सात्त्विक आहार ही करना चाहिये। अब तीनों प्रकारके आहारोंका निर्णय देखिये :—

सात्त्विक आहार—जो ताजा, रस-युक्त, हल्का, सादा, स्नेहयुक्त, मधुर और प्रिय हो। जैसे गेहूँ, चावल, मूँग, दूध, घी, चीनी, नमक शाक, फलादि सात्त्विक आहार हैं।

राजसिक आहार—जो अत्यन्त गर्म, चटपटा, कड़वा, तिक्क, नमकीन, खट्टा, तैलयुक्त, गरिष्ठ और रुखा हो। जैसे— तरह तरहकी गन्दी और अपवित्रताके साथ बनी हुई मिठाइयों चटनी, अचार, लालमिर्च, हींग, प्याज, लहसुन, मांस, मछली चाय, गाँजा, भाँग अफीम, शराब, चरहू, चरस, बीड़ी सिगरेट, तम्बाकू, सोडा, लिसुनेड, आदि।

तामसी आहार—वह है जो धासी, रसहीन, दुर्गन्धित, गला हुआ तथा विप्रम हो। (जैसे घी और तेलके मिश्रण से बने हुए पदार्थ) तामसी आहारसे मनुष्यकी राजसी वृद्धि हो जाती है। ऐसा आहार करनेसे मनुष्य दुखी, वृद्धिहीन, क्रोधी, अधर्मी, भूढ़ चोलनेवाला, हिंसक, लालची, आलसी और पापी हो जाता है।

राजसी आहार यद्यपि तामसीकी अपेक्षा अच्छा है तथापि वह भी ब्रह्मचारीके लिए हानिकारक है। क्योंकि राजसी आहारसे मन चम्चल, कामी, क्रोधी, लालची और शोक-युक्त होता है।

अतएव ब्रह्मचारीको सदा सात्त्विक भोजन करना चाहिये। इसके अलावा भोजनकी मात्रा भी हल्की होनी चाहिये। क्योंकि अधिक भोजन करनेसे शरीरमें भारीपन रहता है, हर समय सुस्ती बनी रहती है। शाख्योय नियम तो यह है कि पेटको आधा अन्नसे, चौथाई जलसे भरकर एक चौथाई वायुके लिये खाली रखना उचित है। यह याद रहे कि सात्त्विक भोजन भी वासी हो जानेसे तामसी हो जाता है और अधिक खा लेनेसे राजसी बन जाता है।

भोजन करनेमें शीघ्रता करना उचित नहीं। क्योंकि जो भोजन खूब कुचल-कुचलकर नहीं खाया जाता, वह यथेष्ट रीतिसे जैसा कि पचना चाहिये नहीं पचता। वह भोजन जल्द पचता और विशेष हितकारी होता है, जो अच्छी तरहसे कुचलकर खाया जाता है। इससे थोड़े भोजनमें काम भी चल जाता है, पाखाना भी साफ होता है। कम-से-कम एक ग्रासको तीस बार कुचलना चाहिये। इस रीतिसे भोजन करना वीर्य-रक्षाके लिए बड़ा ही हितकारक है।

भोजन करते समय खूब शान्त और प्रसन्न रहना चाहिये। क्रोधके साथ जो भोजन किया जाता है, वह सात्त्विक रहनेपर भी राजसी हो जाता है। बहुतसे लोग अधिक विषय करनेके लिए खूब हल्का, मल्लाई आदि पौष्टिक पदार्थ खाते हैं। वे समझते हैं

कि इन चीजोंसे वीर्यके नाशका असर शरीरपर नहीं पड़ेगा। किन्तु यह उनकी भूल है। क्योंकि ये चीजें अच्छे-अच्छे कसरती पहलवानोंके पेटमें बड़ी कठिनाईसे पचती हैं, फिर विलासा मनुष्य इन्हें कैसे पचा सकता है। कारण यह कि जो मनुष्य अधिक विपय करता है, वह तो स्वाभाविक ही बहुत जल्द फम-जार हो जाता है। ऐसा करनेका फल यह होता है कि पेटमें तरह-तरहकी वीमारियाँ हो जाती हैं और अन्तमें उसकी मृत्यु हो जाती है।

अतः ब्रह्मचारियोंको चाहिये कि वे मिठाई, खटाई तथा मसालेदार चीजें खाकर चटोरे न बनें। सादा सादा और स्वच्छ भोजन करें। चटपटी चीजें ब्रह्मचर्यमें धाधा पहुँचाती हैं। लाल मिर्च तो ब्रह्मचर्यके लिए प्रत्यक्ष काल समझिये। इसलिए इन चीजोंको धीरे-धीरे कम करके कुछ दिनोंमें एक दम त्याग देना उचित है।

दिनभरमें केवल दो बार भोजन करना उचित है। पहला भोजन १०-११ बजे और दूसरा शामको आठ बजे करना ठीक है। रातके भोजनके कुछ देर बाद थोड़ा गरम किन्तु ठण्डा दूध चीनी डालकर पी लेना चाहिये। बहुतसे लोग दूधका वर्तन मुँह में लगाते ही एक साँसमें गटक जाते हैं। यह आदत बहुत दुरी है। दूध या पानी धीरे-धीरे पीना चाहिये। जिस प्रकार लोग गरम चायका थोड़ा-थोड़ा करके धीरे-धीरे पीते हैं, उसी प्रकार दूध और पानी भी पीना चाहिये। बहुत गरम भोजन कभी न करना चाहिये, क्योंकि इससे वीर्य पतला पड़ जाता है। इसके अलावा गरम भोजनसे

दौँतोंपर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। किन्तु अधिक देरका बना हुआ भोजन भी नहीं करना चाहिये; क्योंकि देरका बना हुआ भोजन विकार-युक्त हो जाता है। इसी प्रकार कहीं से थककर आते ही भोजन कर लेना भी उचित नहीं है। भोजनके बाद एक घण्टे तक शारीरिक या मानसिक श्रम नहीं करना चाहिये। भोजन-के समय यदि पानी न पिये तो बड़ा अच्छा हो। इससे भोजन जल्द पचता है। यदि पानी पिये बिना न रहा जाय तो थोड़ासा पानी पी लेना चाहिये। पर जहाँ तक हो सके, ब्रिलकुल न पिये और भोजन कर चुकनेके घण्टेभर बाद अपनी इच्छाके अनुसार पानी पी ले। भोजनके बाद सौ कदम धीरे-धीरे टहलना चाहिये। भोजन करते ही चारपाई पर पड़ जाना अच्छा नहीं है।

फलाहार—अन्नकी अपेक्षा फलोंमें बहुत अधिक सात्त्विकता है। कारण यह कि फलोंमें प्राकृतिकता विशेष है। अन्न खाने-वालों के लिए भी थोड़ा-बहुत फल खाना बहुत आवश्यक है। क्योंकि फलोंमें संजीवनी शक्ति बहुत रहती है। भोजन करनेके दो घण्टे बाद फल खाना अच्छा है। वीर्य-रक्षाके लिए फलोंका खाना बड़ा ही लाभदायक है। फलों से नीचे लिखे लाभ होते हैं:—

१—फलोंसे आयुकी वृद्धि होती है, तन्दुरुस्ती ठीक रहती है, बदनमें ताकत आती है, वृद्धि निर्मल होती है और काम-विकार उत्पन्न नहीं होता। इससे चित्त भी खूब प्रसन्न रहता है, शरीर दहलका रहता है।

२—पाखाना साफ होता है, निर्बलता पासमें फटकने नहीं

पाती, कभी कब्ज नहीं होता, ज्वरादि रोगोंसे रक्षा होती है।

३—मनसे बुरी वासनायें निकल जाती हैं, सुन्दर भावनायें उत्पन्न होती हैं, काम-क्रोध-लोभ-मोहादि विकार दूर हो जाते हैं तथा हृदयमें अदूसुत शान्तिका सञ्चार होता है।

४—वीर्य पुष्ट होता है, शरीरकी कान्ति बढ़ जाती है और मानस शुद्ध हो जाता है।

फलोंमें सूर्यतेज और विजली बहुत भरी रहती है, इस कारण फलाहारीको सहसा कोई रोग नहीं हो सकता। फलाहारसे बुद्धि भी तीव्र हो जाती है। हमारे पूर्वजोंका कन्द-मूल-फल ही मुख्य आहार था, यही कारण है कि वे इतने तेजस्वी, बुद्धिमान सदाचारी और शक्ति-सम्पन्न थे, जिनकी ज्ञान-गरिमाको देखकर सारी दुनिया आज भी हैरान हो रही है। किन्तु हम उन्हींकी सन्तान होकर मूर्ख और दबू बने बैठे हैं। इसका कारण यही है कि हम प्राकृतिक नियमोंका पालन न करके रात-दिन वीर्य-नाशके उपायोंमें लगे रहते हैं। अतः अपने पूर्वजोंकी भाँति सदाचारी और ब्रह्मचारी होनेके लिए इसी बातकी आवश्यकता है कि हमारा आहार ठीक हो।

दुर्घाहार—दूध संसारमें अमृत कहलाने योग्य है। वास्तवमें दूधसे उत्तम कोई भी खाने-पीनेकी चीज़ नहीं है। सबसे उत्तम और गुणकारी दूध गायका होता है। यही कारण है कि पुराने जमाने में सर्वस्व-त्यागी ऋषि मुनि लोग भी गो-दुर्घष्टके लिए गौएँ पालते थे। खासकर धारोण दूधमें बहुतसे गुण हैं। कुछ गुण

नीचे लिखे भी जाते हैं:—

१—गायका ताजा दुहा हुआ दूध सवेरे पीनेसे शरीरमें बल-चोर्यकी वृद्धि होती है। मन को शान्ति मिलती है।

२—तत्काण शरीरमें फुर्ती आ जाती है, साहस बढ़ जाता है, आलस्य दूर हो जाता है दिमागमें तरो रहती है।

३—बुद्धि पवित्र होती है, विचारोंमें उच्चता हो जाती है, तथा धातु-सम्बन्धी कई तरहके रोग नष्ट हो जाते हैं।

४—गायका दूध हल्का होता है, इसलिए जल्द पचता है।

यदि गायका दूध न मिले तो भैसके दूधका सेवन करना उचित है। भैसका दूध गायके दूधकी अपेक्षा अधिक गरिष्ठ होता है। दूध देनेवाली गाय या भैसको शुद्ध उण-चारा खिलाना चाहिये। क्योंकि जैसा आहार दिया जाता है, वैसा ही दूधका गुण होता है। जो गाय रोगी हो, अशुद्ध और हानिकारक चीजें खाती हो, उसका दूध कभी न पीना चाहिये। इसलिए समझदार लोग बाजार दूध नहीं पीते।

दूधको बिना कपड़ेसे छाने कभी नहीं पीना चाहिये। गरम दूधमें उतनी प्राणशक्ति नहीं रह जाती, जितनी कि ताजे और कच्चे दूधमें रहती है। दुहनेके आधा घण्टे बाद दूधमें विकार पैदा हो जाता है इसलिए देरके दुहे हुए दूधको बिना उबाले नहीं पीना चाहिये।

चौथा प्रकरण

संगति

ज्ञानचारीके लिए संगतिपर पूरा ध्यान देना चाहिये;
 क्योंकि जैसे मनुष्यका साथ पड़ता है, वैसा ही
 हृदय हो जाता है। इसलिए हमेशा बड़ोंकी संगति करनी चाहिये।
 सत्संगसे मनुष्यका जितना सुधार होता है, उतना और किसीसे
 नहीं। सत्संगकी महिमा ही अपरम्पार है। इसीसे गुरुसाईंजीने
 लिखा है:—

“तात स्वर्ग अपर्वर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
 तुलै न ताहि सकल सुख, जो सुख लव सत्संग ॥”

—रामचरित-मानस।

सत्संगके प्रभावसे अधम स्वभाववाले साधु और सदाचारी
 बन जाते हैं। कुसंगमें पड़नेसे मनुष्यका जीवन ही नष्ट हो जाता
 है। फिर वह किसी कामके लायक नहीं रह जाता।

“बहु भल धास नरक कर ताता।
 दुष्ट संग जनि देइ विधाता ॥”

—रामचरित-मानस।

इसीलिए अच्छे और बड़े लोग वुरे आदमियोंसे सदा दूर रहते हैं। इस यातका दावा कोई भी नहीं कर सकता कि मैं कुसंगमें रहकर भी अपने धर्मका पालन करता रहूँगा। क्योंकि ऐसा दावा करना विपपान करके जीवित रहनेका दावा करनेके समान है। अतएव ब्रह्मचारियोंको उचित है कि वे कुसंगमें सदा दूर रहें। वुरे लोगोंकी हवा भी अपने शरीरमें न लगने दें।

ब्रह्मचारियोंको सदा सत्संगमें ही रहना चाहिये। संसारमें जितने साधन मौजूद हैं, उन सबमें सत्संग सबसे श्रेष्ठ उपाय है। जगद्गुरु शंकराचार्यने लिखा है:—सत्संगसे निःसंगकी प्राप्ति होती है। निःसंगसे निर्मोहत्व होता है; निर्मोहत्वसे सत्यका चर्थार्थ ज्ञान और निश्चय होता है। वह मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है, यानी भवसागरसे पार हो जाता है।

गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है,—“सठ सुधरहिं सत्-संगतिं पाई । पारस परसि कृधातु सुहाई ॥” वास्तवमें यह कथन बहुत ही ठीक है। एक समय विष्णु भगवान्‌ने राजा वलिसे पूछा,—तुम सज्जनोंके साथ नरकमें जाना पसन्द करते हो या दुर्जनोंके साथ स्वर्गमें ? वलिने तत्काल उत्तर दिया कि, मुझे सज्जनोंके साथ नरकमें जाना ही पसन्द है। विष्णु भगवान्‌ने पूछा,—सो क्यों ? वलिने कहा,—जहाँ सज्जन हैं, वहाँ स्वर्ग है और जहाँ दुर्जन हैं, वहाँ नरक है। दुर्जनोंके निवाससे स्वर्ग भी नरक बन जाता है और सज्जनलोग नरकको भी स्वर्ग बना देते हैं। सज्जनलोग जहाँ रहेंगे, वहाँ सब कुछ रहेगा।

ग्रंथावलोकन

उत्तम ग्रंथ भी मित्रके समान ही उपकारी होते हैं। जहाँ सत्संग न हो, वहाँ सद्ग्रन्थोंहीको संगति करनी चाहिये। सद्ग्रन्थोंसे मनुष्यको हर समय शान्ति मिलती है। आजतक जितने महात्मा हुए हैं, सब सद्ग्रन्थों और सन्मित्रोंके हा प्रभावसे। उच्चवकोटिके ग्रंथोंद्वारा ही ज्ञानका कोप संधारमें सुरक्षित है। जिसने इनकी आराधना की उसे कुछन्तकुछ अवश्य मिजा।

सद्ग्रन्थोंके पठन-पाठनसे मनकी सारी कुचिन्तायें मिट जाती हैं; संशय दूर हो जाता है और मनमें सङ्घाव जागृत हो जाता है। ज्ञानानन्दके सामने विपयानन्द फीका पड़ जाता है। अतः ब्रह्मचारीको प्रतिदिन सन्ध्या-संवेदे अथवा फुर्सतके समय पवित्रता और एकाग्रतापूर्वक किसी पवित्र ग्रंथका पाठ और मनन करना चाहिये। अपने दिलमें यह निश्चय कर लेना चाहिये कि प्रति दिन मैं इतना पाठ करके तब अन्न और जल प्रहण करूँगा। ऐसा निश्चय कर लेनेसे मनुष्यके भीतर अद्भुत शक्ति पैदा होने लगती है। ब्रह्मचर्यकी रक्षाके लिए योगवाशिष्ठ, गीता, रामायण, दास-बोध, आदि पुस्तकें विशेष उपकारी हैं।

जिस प्रकार कुसंगसे सर्वताश हो जाता है, उसी प्रकार बुरी पुस्तकें पढ़नेसे भी जीवन बर्बाद हो जाता है। इसलिए ब्रह्मचा-

रीको चाहिये कि वह शृंगाररसपूर्ण अथवा मनमें बुरे भाव उत्पन्न करनेवाली पुस्तकें कभी न पढ़े। बुरी पुस्तकोंके पढ़ने और सुननेसे सच्चरित्र बच्चे भी दुश्चरित्र हो जाते हैं। इसलिए ऐसी पुस्तकें त्याग दो। बुरी पुस्तक पढ़ना और विष खा लेना वरावर है। अतः मूर्खतासे कभी कोई गन्दी पुस्तक न पढ़ वैठो। कारण यह कि बुरी वातें जल्द मनमें बैठ जाती हैं, पर अच्छी वातें जल्द नहीं बैठती। आजकल अश्लील तथा दुष्काजनक पुस्तकोंका खूब प्रचार हो रहा है। इन बुरी पुस्तकोंसे ब्रह्मचर्यका विशेष रूपसे परद होता है।

अतः जो लोग वीर्य-रक्षा करना चाहें, वे बुरी पुस्तकें भूलकर भी हाथसे न छुयें। ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह अवकाशके समय सदाचार, नीति, धर्म तथा गम्भीर विषयोंकी पुस्तकें पढ़े; जैसे, गीता, रामायण, मनुस्मृति, दर्शन-शास्त्र आदि; उत्तमोत्तम महापुरुषोंकी जीवनियाँ पढ़े; जैसे स्वामी रामतीर्थ, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, लोकमान्य तिळक, तुकाराम आदिके जीवनचरित।

अच्छी पुस्तकोंके निरन्तर पाठसे कर्मनिष्ठा, प्रसन्नता, धीरता, विचारशक्ति, दया और बहुज्ञता प्राप्त होती है; चिन्ता, भय, पराधीनता, द्वेष-भाव और अहंकारादि दुरुःख दूर हो जाते हैं। मन और महितज्जको अपूर्व शान्ति मिलती है। मनुष्यउद्योगी, परिश्रमी तथा विचारकान हो जाता है। इसलिए ब्रह्मचारीको अध्ययनशील बनना चाहिये।

पवित्र-दृष्टि

संसारकी प्रत्येक वस्तुमें गुण और दोष दोनोंका समावेश है। जिस वस्तुसे हमारे जीवनकी रक्षा होती है, उसी वस्तुसे हमारा संहार भी हो सकता है। उदाहरण लीजिये, भोजनसे हमारी धृद्धि होती है, और उसीसे कभी-कभी हमारा नाश भी हो जाता है। ठीक यही हाल आँखोंका भी है। शरीरमें आँख बड़ी ही जखरी इन्द्रिय है। इसके बिना मनुष्यको बड़ा कष्ट होता है। किन्तु इन आँखोंद्वारा ही मनुष्यका पतन भी हो जाता है। इसलिए ब्रह्मचारीको पतनकी ओर कभी न मुकना चाहिये। जो मनुष्य स्त्रियोंकी ओर अधिक ताकता है, संसारकी नाना प्रकारकी चीजोंको पानेके लोभसे देखता है, वह अवश्य नष्ट जाता है। किसी स्त्रीका ध्यान करना, उसकी सूरत देखनेके लिए लालायित होना, युवतियोंकी ओर धूरकर देखना, ब्रह्मचर्यका घातक है।

इसलिए ब्रह्मचारीको पवित्र-दृष्टि रखनी चाहिये। यदि किसी स्त्रीका स्मरण आ जाय तो फौरन अपनी माताके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये अथवा परमात्माके मनोहर स्वरूपमें मन लगाना चाहिये। इस प्रकार अपनी माँ या ईश्वरको उस स्त्रीमें देखने लगो। यदि किसी स्त्रीके किसी अंगका स्मरण हो आवे, तो अपनी माताके उसी अंगका स्मरण करो। इससे तुम्हारे भाव दूषित होनेसे सहजहीमें बच जायेंगे और तुम्हारी पापपूर्ण वासनाओंका अन्त हो जायगा। किसी स्त्रीसे बालचीत न करो। यदि

कभी फोर्द ऐसा प्रसंग आ जाय कि बिना घात किये काम न चल सके, तो आवश्यकीय धातें कर लो, किन्तु अपनी माँ या बहनकी दृष्टिसे उस लांको देखते हुए। इसका मतलब यह नहीं है कि उस लांकी और ताकते रहो। ऐसा कभी नहीं करना चाहिए; आँखें नीची किये रहना ही उचित है। हमारे कहनेका मतलब यह है कि नीची निगाह किये रहनेपर भी यदि मनश्चक्षु उस लांके स्वरूपको देखनेमें व्यस्त रहे; तो माँ और बहनके रूपमें उसे देखो। ऐसा भाव रखनेसे ग्रन्थचारीके ब्रतका पालन होता है।

यदि कभी किसी बुरी बस्तुपर दृष्टि पड़ जाय, तो फौरन अपनी दृष्टिको समेट लो और ईश्वर-चिन्तनकी ओर मन लगा दो। ऐसा करनेसे तुम्हारे मनमें उस बुरे दृश्यका कुसंस्कार नहीं पड़ने वालेगा और तुम्हारी पवित्रता ज्योंकी-त्यों बनी रहेगी। किन्तु सदा सतर्क रहनेसे ही मनुष्य अपनेको बचा सकता है, अन्यथा नहीं।



पाँचवाँ प्रकरण

॥ बाल-शिक्षा ॥



खकी बात है कि आजकल मूर्खताके कारण बालक-
दुःख बालिकाओं को उचित शिक्षा नहीं दी जाती, इसलिए
बचपनमें ही उनकी आदतें खराब हो जाती हैं।
माता-पिताका धर्म है कि वे अपने बच्चोंको पूर्ण नैतिक-
शिक्षा दें। पाठशालामें पढ़नेके लिए भर्ती करा देना किसी कामका
नहीं यदि उन्हें नैतिक शिक्षा न दी जाय। आवश्यकता इस बातकी
है कि बच्चोंमें चरित्र-बल पैदा हो और वे सदाचारी बनें। किन्तु
यह तभी हो सकता है, जब प्रथम-हीसे बच्चोंपर हृषि रखी जाय।
इसके लिए नीचे लिखी बातोंपर ध्यान देना जरूरी है:—

१—लड़के बुरी संगतिमें न पढ़ने पावें। किसी अपरिचित
युवकके साथ न रहने पावें। खेलें-कूदें खूब, पर अच्छे लड़कोंके
साथ। रातमें किसी बिगाने आदमीके पास न सोवें।

२—चटपटी चीजें खिलाकर बच्चोंकी जबान न बिगाड़े।
गरम विस्तरैपर न सुलावे। औंधा भो न सोने दे।

३—शिक्षापूर्ण कहानियाँ सुनावे। बीरोंकी जीवनियाँ सुनाकर वीरताका भाव उत्पन्न करे। विवाहादिकी कोई भी वात उनसे न कहे। श्री-पुरुषके गुप्त जीवनका प्रकाश उनपर जरा भी न पड़ने दे।

४—इन वातोंका पहले-हीसे अभ्यास ढालेः—बड़ोंकी सेवा और उनकी आज्ञाका पालन, सहन शीलता, सत्यता, आलस्यका त्याग, निरमिमान, परिश्रमकी वान, हृदता, साहस, ईश्वरोपासना और प्रत्येक वस्तुसे कुछ-न-कुछ शिक्षा लेनेकी चेष्टा। किसके साथ कैसा वर्त्तव करना चाहिये, इसका भी उनमें ज्ञान होना जरूरी है। ऊपर की वातोंपर ध्यान रखनेसे वज्रोंकी आदत नहीं बिगड़ने पाती और वे ब्रह्मचर्यका पालन करनेमें समर्थ होते हैं।

॥ ब्रह्मचर्यपर अथर्ववेद् ॥

अथर्व वेदमें ब्रह्मचर्यका प्रकरण वड़ा ही सुन्दर है। पाठकोंके लाभार्थ यहाँ उसका कुछ अंश दिया जाता है। इस व्याख्यामें सृष्टिको ब्रह्मचारी बनाकर यह दिखलाया गया है कि इसी प्रकार मनुष्य को भी ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। पहले श्रेष्ठ ब्रह्म-चारीका कर्तव्य देखिये। लिखा है कि—

ब्रह्मचर्येति समिधा समिद्धः काण्डे

वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ॥

स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं

लोकान्संगृभ्य सुहुराचरिक्त् ॥

अर्थात् तेजसे प्रकाशित कृष्णचर्म धारण करता हुआ, ब्रतके अनुकूल आचरण करनेवाला और वड़ी-वड़ी दाढ़ी-मूँछ धारण करनेवाला ब्रह्मचारी प्रगति करता है। वह जनताको एकत्र करता हुआ बारम्बार उनको उत्साह प्रदान करता है और पूर्वसे उत्तर समुद्रतक शीघ्र ही पहुँचता है।

इस मंत्रके पूर्वार्द्धमें कृष्णचर्म लिखकर ब्रह्मचारीके सादेपनकी सूचना दी गयी है। इस प्रकारसे रहकर विद्याध्ययन करनेके बाद ब्रह्मचारी तमाम लोगोंको महान् कर्ममें प्रवृत्त करता है। इस प्रकार वह ब्रह्मचर्याश्रम रूपी पूर्व अवस्थासे गृहस्थाश्रम रूपी उत्तर अवस्थामें प्रवेश करता है और संसार-सांगरमें अपनी जीवन-नौकाको चलाता है। जनताकी उन्नति करनेके लिए जिन कामोंका करना आवश्यक होता है, उन्हें वह करता है। इसका विचार आगेके मंत्रमें है—

ब्रह्मचारी जनयन्त्रब्रह्मोलोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् ।
गर्भो भूत्त्वाऽसृतस्योनाविंद्रोह भूत्त्वाऽसुरांस्तर्दृ ॥

जो ज्ञानासृतके केन्द्रन्स्थानमें गर्भरूप रहकर ब्रह्मचारी हुआ चहीं ज्ञान, कर्म, जनता, प्रजापालक राजा और विशेष तेजस्वी परमात्माको प्रकट करता हुआ, इन्द्र बनकर अवश्यमेव राक्षसोंका नाश करता है।

तात्पर्य यह कि आचार्यके पास नियम,रूप गर्भमें रहकर विद्याध्ययन करनेके बाद ब्रह्मचारी ज्ञान, सत्कर्म, प्रजा और राजाके

धर्म तथा परमात्माके स्वरूपका प्रचार करता हुआ अन्तमें वीर बनकर शत्रुओंका नाश करता है ।

आचार्यस्तततङ्गं नभसी उभे इमे उर्वा गम्भीरे पृथिवी दिवंच ।

ते रक्षति तपसी ब्रह्मचारी तस्मिन्देवा संमनसो भवन्ति ॥

ये बड़े गम्भीर दोनों लोक पृथिवी और द्युलोक आचार्यने बनाये हैं । ब्रह्मचारी अपने तपसे उन दोनोंकी रक्षा करता है । इसलिए उस ब्रह्मचारीके अन्दर सब देवता अनुकूल मनसे रहते हैं ।

अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिंगो वृहच्छ्रेयोऽनुभूमौजभार ।
 ब्रह्मचारी सिंघति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतसः ॥

गर्जन करनेवाला भूरे और काले रंगसे युक्त बड़ा प्रभावशाली ब्रह्म अर्थात् उदक (जल) को साध ले जानेवाला मेघ (बादल) भूमिका उचित रीतिसे पोषण करता है तथा पहाड़ और पृथिवीपर जलकी वृष्टि करता है, उससे चारों दिशायें जीवित रहती हैं ।

ओपधयो भूतभव्यमहो रात्रे वनस्पतिः ।

मम्बत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥

पार्थिवा दिव्या पश्व आरण्या ग्राम्याश्रये ।

अपक्षा पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥

ओषधियाँ, वनस्पतियाँ शत्रुओंके साथ गमन करनेवाला सम्बत्सर, अहोरात्र, भूत और भविष्य ये सब ब्रह्मचारी हो गये हैं । पृथिवीपर उत्पन्न होनेवाले वन और गाँवमें उत्पन्न होनेवाले

पक्षहीन पशु तथा आकाशमें भ्रमण करते वाले पक्षी, सब ब्रह्मचारी बने हैं।

औषधि वनस्पतिमें ठीक मौसिममें ही फूल-फल लगते हैं, विना मौसिमके नहीं। इसलिए उनमें ब्रह्मचर्य है। मेघ भी ब्रह्मचारी है, क्योंकि वह ऊर्ध्वरेता है यानी ऊपर जल धारण किये हुए है। तात्पर्य यह कि ऊर्ध्वरेता होनेके कारण मेघमें पृथिवीके पालन करनेकी शक्ति है, यदि वह ब्रह्मचारी न होता तो यह कार्य कदापि न कर सकता। सूर्य भी अपनी किरणोंसे जलको ऊपर खींचता है। मनुष्य भी प्राणके आकर्पणसे अपने वीर्यको ऊपर खींच सकता है। इस प्रकार मेघ और सूर्यके उदाहरणसे ब्रह्मचर्यका माहात्म्य वर्णन किया है। प्रायः सभी पशु-पक्षी भी ऋतुगामी होते हैं। वे अपनी छियोंसे गर्भाधानके लिए ही सम्मोग करते हैं।

इस प्रकारके वैदिक मंत्रोंसे यह सिद्ध होता है कि जब पशु-पक्षीतक इस नियमका पालन करते हैं कि विना ऋतुकालके बे खी-प्रसंग नहीं करते तथा मेघ और वनस्पतिमें भी वीर्यको ऊपर खींचनेकी शक्ति है, तब मनुष्यमें यदि ये बातें न हों तो महान् लज्जाकी बात है। मनुष्य सब प्राणियोंसे श्रेष्ठ है। उसे नियमके विरुद्ध करना शोभा नहीं देता। अतः उसका है कि वह भी वृक्ष-वनस्पतियोंकी भाँति वीर्यको प्राणद्वारा ऊपर खींचकर ब्रह्माण्डमें स्थित करे, तीचे न आने दे और ऋतु-मती खीके साथ ही गर्भाधानके लिए सम्मोग करे और किसी

समय भी न करे । यदि वह इसके विरुद्ध आचरण करेगा तो पतित समझा जायगा ।

— चारों वर्ण और आप्रम ।

गीतामें भगवान्ने कहा हैः—

“चातुर्वर्णं मया सृष्टं गण-कर्म विभागशः ।”

चारों वर्णोंकी रचना गण और कर्मके अनुसार की गयी है।

ब्राह्मणके छः कर्म हैं—पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना,
दान देना, दान लेना। ये छः तो ब्राह्मणके कर्म हुए। अब ब्राह्म-
णमें किन-किन गुणोंका होना चलता है, सो सुनिये। मनकी
शान्ति, इन्द्रियोंका दमन पवित्रता, क्षमा-शोलता, सरलता, ज्ञान,
विज्ञान और आस्तिकता ये ब्राह्मणके स्वाभाविक गुण हैं।

क्षत्रियोंके ये कर्म हैं—पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, प्रजारक्षण। इसी प्रकार शूरता, तेज, धैर्य, दक्षता, दान और आस्तिकता ये क्षत्रियोंमें स्वभाविक होना चाहिये ।

वैश्योंका कर्म है—पढ़ना, यज्ञ करना, व्यापार करना, दान, देना। उदारता, व्यापार-कुशलता भक्ति-तत्परता और क्रमाशीलता ये वैश्यके स्वाभाविक गुण हैं।

शूद्रोंका कर्म है, ऊपर कहे गये तीनों वरणोंकी बड़े संमयके साथ हर तरहसे सेवा करता ।

चारों वर्णोंको समान रूपसे ब्रह्मचर्यका पालन करके अपने-

अपने धर्ममें प्रवृत्त होना चाहिये । वहुतसे लोग यह समझते हैं कि शूद्रोंको ब्रह्मचर्यका पालन और विद्याध्ययन करना उचित नहीं है । शास्त्रकारोंने निषेद किया है । किन्तु ऐसा समझनेवाले भूज करते हैं । वेद तो पशु-पक्षियोंके ब्रह्मचारी रहनेका वर्णन करता है । फिर मनुष्यको उससे क्योंकर बंचित रखा जा सकता है ? दूसरी बात यह भी है कि बिना ब्रह्मचर्यके स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता । जिसका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहेगा, वह अपनी जान संभालेगा या दूसरेकी सेवा करेगा । रही शूद्रोंके विद्याध्ययनकी बात, सो ज्ञान प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्यका धर्म है । ज्ञानके बिना मनुष्य अपने कर्त्तव्य-कर्मोंको कैसे जान सकेगा ? इसलिए विद्याध्ययन करना भी शूद्रोंको उचित है और शास्त्र-विद्वित है ।

उक्त चारों वर्णोंके लिए चार आश्रम हैं । उनके नाम ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और सन्याश्रम । उपनयन संस्कारके बाद बालकोंको गुरुकुलोंमें जाकर रहना चाहिये । ब्रह्मचर्याश्रममें बालक साढ़ी चालसे कौपीन धारण करके विद्याध्ययन करता है, गुरुकी सेवा करता है और अपने आचरणोंका पालन करता है । इसकी अवधि कम-से-कम २५ वर्षकी अवस्थातक है । अधिक दिनोंतक ब्रह्मचर्यका पालन करे, तो और भी उत्तम । पर इससे कम नहीं होना चाहिये ।

बाद वह ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रममें प्रवेश करता है । इस दूसरे आश्रममें उसे सन्तानोत्पत्ति, द्रव्योपार्जन और लोकसेवा तथा

अतिथि-अभ्यागतोंकी सेवा करनी चाहिये। इसका समय २५ वर्षसे ५० वर्ष तक है।

फिर गृहस्थाश्रमसे वान-प्रस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये।
मनुमहाराजने लिखा है:—

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्गुली पलितमात्मनः ।
अपत्यस्थैवचापत्यं तदारण्यसमाश्रयेत् ॥

अर्थात् जब गृहस्थ अपने शरीरको बलहीन होता देखे और घरमें पुत्र-पौत्र हो जायें, तब वनमें प्रवेश करे। इसकी अवधि ५० वर्षसे ७५ वर्षतक है। इस आश्रमके मुख्य कर्त्तव्य ये हैं।

१—वनमें कुटी बनाकर शान्तिके साथ जीवन व्यतीत करे, सांसारिक आडम्बरोंको त्याग दे, निर्मांह होजाय और प्रकृतिके सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वोंका गम्भीरता और बारीकीके साथ निरीक्षण करे।

२—संसारके कल्याणार्थ विद्यार्थियोंको विद्यादान दे। किन्तु उनसे कभी कुछ माँगे नहीं।

३—संसारके छोटे-से-छोटे जीवधारीको भी प्रेमकी हृषिसे देखे और “अहिंसा परमोधर्मः” का पालन करे।

४—कन्द-मूल-फलादिसे अपनी क्षुधाका निवारण कर लिया करे और सदा स्वर्गीय आनन्दमें विचरण करे।

५—नाना प्रकारकी विद्याओंका आविष्कार करे। सदा अपनी आत्माकी उन्नतिकी और ध्यान रखे।

६—गृहस्थोंको उचित शिक्षा दे। इन्द्रियोंपर अधिकार करनेके लिए योगाभ्यास करे और परमात्माकी ओर मन लगावे।

इसके बाद संन्यासाश्रममें प्रवेश करे। यह अन्तिम आश्रम है। इसकी अवधि ७५ वर्षके बाद जीवन-पर्यन्त है। इसमें पहले कहे गये तीनों आश्रमोंके कर्मोंका त्याग हो जाता है। इस आश्रमके प्रधान कर्तव्य ये हैं:—

१—आहार कम कर देना तथा किसी स्थानपर एक रात्रिसे अधिक निवास न करना अर्थात् भ्रमण करते रहना। अपने पवित्र और उच्च-विचारोंसे संसारका हित करना और दोषोंको दूर करना।

२—काम-क्रोध-लोभादिसे मुक्त रहकर आचरण-शुद्धि-द्वारा मनपर विजय प्राप्त करना।

३—इच्छा-रहित होकर हर जगह निर्भीकता-पूर्वक रहना और सत्यका पालन करते रहना।

४—सुख-दुःखको समान समझना, प्राणिमात्रको समर्हणिसे देखना यानी किसीको अधिक और किसीको कम न मानना, संसार भरको कुदुम्बके समान समझना, अपने और परायेका भाव दिलसे निकाल देना।

५—योगाभ्यासद्वारा आत्मस्वरूपका ठीक-ठीक अनुभव करके सत्-चित्-आतन्द-स्वरूपमें मिल जाना—जीवन-मरणसे मुक्त हो जाना—अक्षय कीर्ति छोड़ जाना आदि।

इस प्रकार चारों वर्णों और चारों आश्रमोंकी व्यवस्था है। संन्यासधर्म वड़ा ही कठिन है। उसमें उसी मनुष्यको प्रवेश करना,

चाहिये जो अपनी इन्द्रियोंको बशा कर ले। किन्तु आजकल तो इस आश्रमको लोगोंने खेलवाड़ समझ रखा है। जहाँ घरमें किसीके साथ भगड़ा हुआ या खांने कुछ कहा अथवा व्यापारमें बाटा लगा कि कितनेही लोग घर छोड़कर संन्यास प्रहण कर लेते हैं। वे समझते हैं कि गेहूआ वस्त्र पहनकर सबके घर घढ़िया माल उड़ाना ही सन्यासाश्रमका धर्म है। ऐसे लोगोंसे हमारे देश-की वहुत बड़ी हानि हो रही है। कुछ लोगोंके मनमें चर्णिक वैराग्य उत्पन्न होता है और वे यह समझकर भी सन्यास प्रहण कर लेते हैं कि गृहस्थोंमें वहुतसी वाधायें हैं, बड़ी हाय-हाय करनी पड़ती है—सन्यास प्रहण कर लेना सबसे अच्छा है; क्योंकि उसमें किसी धातकी चिन्ता नहीं रहेगी और मनको शान्त करनेका पूरा अवकाश मिलेगा। किन्तु ऐसी धारणा भी विलकुल मूर्खतासं भरी हुई है। जो मनुष्य अपने घरमें रहकर कुछ नहीं कर सकता, वह बाहर जाकर क्या करेगा? जो मनुष्य गृहस्थ धर्मका पालन नहीं कर सकता, उससे सन्यासके कठिन नियमोंका पालन क्योंकर हो सकता है? ऐसे लोग सन्यास प्रहण करके जीवनको वर्द्धाद कर डालते हैं। कारण यह कि उनका हृदय तो तमाम दोपांसे भरा ही रहता है, मोह-ममता वनी ही रहती है, शुद्ध विराग तो उत्पन्न हुआ नहीं रहता, इसलिए वे सन्यास प्रहण करके कभी खीके लिए दुखों होते हैं और एकान्तमें बैठकर उसकी चिन्ता करते हैं तो कभी पुत्रके लालन-पालन और तोतली बोलीकी बाढ़ करके विलखते हैं। बतलाइये तो सही, फिर

संन्यास कहाँ रहा ? ऐसे लोगोंकी क्या गति होती है, ईश्वर हो जाने। इसलिए हर मनुष्यको कोई काम करनेसे पहले अच्छी तरहसे सोच लेना चाहिये और यह देखना चाहिये कि अमुक काम करनेके अधिकारी हम हैं, अथवा नहीं। क्योंकि अनधिकार चेष्टा करना मूर्खता है।

॥ उपनयन और विद्याभ्यास ॥

॥४७॥

उपनयन-संस्कार हो जाने यानी यज्ञोपवीत धारण कर लेनेके बाद ब्रह्मचारीको विद्या पढ़नेके लिए गुरुकुलमें जाना चित है। यहाँसे ब्रह्मचर्याश्रम प्रारम्भ होता है। प्राचीन कालमें इस संस्कार के बाद वज्रे गुरुकुलमें भेज दिये जाते थे। सृति-ग्रंथोंने केवल द्विजाति मात्रको (द्विजातिमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन जातियाँ हैं) यज्ञोपवीतका अधिकारी माना है, शूद्रोंको नहीं। यज्ञोपवीत धारण करनेका समय-विधान इस प्रकार हैः—

गर्भाद्यमादेऽकुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।

गर्भादेकादशोराज्ञो गर्भस्तु द्वादशोविशः ॥

—मनुस्मृति

याती 'गर्भसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका, ग्यारहवेंमें क्षत्रियका और बारहवेंमें वैश्यका उपनयन करना चाहिये' ब्रह्मवर्चसूकी इच्छासे ब्राह्मणका पाँचवें वर्षमें, बल्की इच्छासे क्षत्रियका छठेमें और धनकी इच्छासे वैश्यका आठवेंमें उपनयन करनेका भी विधान है। इसी प्रकार सोलह वर्षके बाद ब्राह्मणोंको, वाईसके

वाद ज्ञनियोंको और चौधीसके वाद वैश्योंको गायत्री-मंत्रका उपदेश देनेका अधिकार नहीं है अर्थात् अधिकसे अधिक इस अवस्था तक यज्ञोपवीत-संस्कार अवश्य हो जाना चाहिये ।

यज्ञोपवीतके समय योग्य आचार्य धालकको दीक्षित करता है । किन्तु दुःखकी बात है कि समयके फेरसे वह महत्त्वपूर्ण प्रणाली नष्ट हो गयी, आज लख्छु तुद्धू आचार्य-पदपर बिठा दिये जाते हैं । यदि उपनयन-संस्कारको विधियोंपर दृष्टि डाली जाय तो पता चलता है कि उसमें कितने उत्तम रहस्य भरे हुए हैं । अभिकी उत्तर दिशामें पूर्वाभिमुख होकर आचार्य बैठता है और अपनी अंजलिमें जल लेकर सविता (गायत्री) मंत्रसे चूँद-चूँदकर शिष्यकी अंजलिमें टपकाता है । इसका अभिप्राय यह है कि इसी प्रकार क्रमशः हम अपनी सारी विद्यायें तुम्हें पढ़ावेंगे ।

इस प्रकार प्राचीन समयमें यज्ञोपवीतके समय अभिमन्त्रित होकर वज्रे गुरुकुञ्जोंमें जाते थे और विद्याध्ययन करते थे । उस समय स्थल-स्थलपर गुरुकुल थे । प्रायः सब गुरुकुल ऐसे ही स्थानोंपर थे, जहाँकी जल-वायुमें किसी प्रकारका विकार नहीं होता था । ये प्रायः बनोंमें पार्वतीय भूमिपर होते थे । ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रमको लौंघकर वानप्रस्थाश्रममें रहनेवाले लोग हो अध्यापक होते थे । इसलिए वज्रोंपर उत्तम संस्कार पड़ता था और वे नाना प्रकारकी विद्यायें सीखकर विद्वान्, धर्मात्मा, तेजस्वी और सदाचारी होते थे । वाद गृहस्थाश्रममें प्रवेश करके नियमित

ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए गृह-कार्य करते थे ।

किन्तु आज हमारे देशकी वह प्रणाली नहीं रही । न तो वैसे विद्वान्, सदाचारी और निष्ठार्थी आचार्य ही हैं और न वैसे गुरुकुल ही । हमारे देशके आचार्योंमें इस समय आचार-भ्रष्टता कूट-कूटकर भर गयी है । अतः वच्चे भी विद्याध्ययन-कालमें ही दुराचारी हो जाते हैं । उनका उचित रीति से ब्रह्मचर्य-पालन नहीं होता । घरवाले भी थोड़ी ही अवस्थामें विवाह कर देते हैं । परिणाम यह होता है कि उनका सारा जीवन चौपट हो जाता है । इसीसे आजकलके छात्र स्कूल या कालेजसे निकलते ही नौकरी हूँड़ने लगते हैं, गुड़ामीके सिवा उन्हें कुछ सुझाई ही नहीं पड़ता । हम मानते हैं कि आजकलकी शिक्षा-प्रणाली भी बड़ी भद्री है । महात्मा गान्धीके शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि आजकलके शिक्षालयोंको तो शिक्षालय कहना ही उचित नहीं है ये तो गुलाम तैयार करनेके कारखाने हैं । बात बहुत ही यथार्थ है । यदि लड़कोंको उचित शिक्षा मिले और वे स्वावलम्बी बनाये जायें, तो उनकी यह दशा कदापि न हो । पर उसके साथ ही यह भी बात है कि यदि अध्यापकगण सदाचारी हों और लड़कोंको ब्रह्मचर्यकी पूरी शिक्षा दे सकें तो बल-वीर्यके प्रतापसे हमारे छात्रगण इतने निरुत्साही और अकर्मण्य कदापि नहीं हो सकते ।

इसलिए देशमें फिर प्राचीन समयकी तरह गुरुकुलोंके खुलने तथा सदाचारी और विद्वान् अध्यापकोंकी आवश्यकता है । हप की बात है कि स्व० स्वामी श्रद्धानन्दजीके प्रयत्नसे कई छोटे-मोटे

गुरुकुलोंकी स्थापना हुई है, पर वह अभी नहीं के बराबर ही कहा जा सकता है। क्योंकि अभी उनमें न तो वैसे योग्य अध्यापक ही हैं और न वैसी शिक्षण-प्रणाली ही है। सुतरां देशवासियोंको इधर विशेष रूपसे ध्यान देना चाहिये। ऐसा प्रवन्ध किये जिना बालकोंका ब्रह्मचारी और विद्वान् होना असम्भव है।

॥ व्यायाम ॥

वीर्यकी रक्षाके लिए कसरत बड़ी ही उपयोगी चीज़ है। इसलिए ब्रह्मचारीके लिए व्यायाम करना आवश्यक है। व्यायामकी प्रणाली विगड़ जानेसे भी ब्रह्मचर्य-पालन करनेकी प्रथापर बहुत बड़ा आघात पहुँचा है। प्राचीन सभ्यमें गाँव-गाँव और मुहल्ले-मुहल्लेमें व्यायाम-शालाएँ होती थीं, सब लोगोंको इस वीरता-पूर्ण कार्यसे शौक था, यही कारण है कि लोग हझे-कहूँ, साहसी, पुष्ट और सदाचारी होते थे किन्तु आजकल तो हमारे जीवनका लक्ष्य ही कुछ और हो गया है। विलासिताकी मात्रा अधिक बढ़ जानेके कारण कितने ही युवक शरीरमें मिट्टी लगते वेतरह घबड़ते हैं। वे यह नहीं जानते कि मिट्टीमें कितने गुण भरे हुए हैं। इसमें इतनी संजीवनी शक्ति है कि सर्पका विष भी यह आसानीसे चाट जाती है। ऐसी उपादेय वस्तुको घृणाकी दृष्टिसे देखना मूर्खता नहीं तो क्या है? परं यह तभी हो सकता है, जब व्यसन दूटे, तेल-फुलेलसे चेहरा चिकनानेकी बान जाती रहे।

आयुर्वेद का मत है कि व्यायाम करनेसे शरीर सुहृल होता है। अंगकी थकावटसे व्यर्थको काम-चेष्टा नष्ट हो जाती है। नौद खूब आती है, और मन स्थिर रहता है। अग्रिं तीव्र होती है, आलस्य दूर हो जाता है, जलदी सर्दी या गर्मी असर नहीं कर पाती। व्यायामसे सुन्दरता भी घढ़ जाती है, चेहरेपर कान्ति आ जाती है। व्यायाम करनेवालेको अजीर्ण, दस्त या कट्टजकी शिकायत नहीं रहती। कहाँतक कहा जाय, इसमें बहुतसे गुण हैं।

किन्तु व्यायामकी सात्रापर ध्यान रखना चाहिये। बहुतसे लोग व्यायाम इतना बढ़ा देते हैं कि देखकर बुरा मालूम होता है। यह अच्छा नहीं है। अत्यधिक व्यायाम करनेसे बहुत तरहके रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना रहती है। अधिक व्यायाम से श्वास, कास, क्षय, घात, अरुचि, भ्रम, आलस्य, ज्वरादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए आधा बल रखकर व्यायाम करना चाहिए। जब माथे पर पसीना आ जाय तथा साँस जोर-जोरसे चलने लगे, तब व्यायाम बन्द कर देना उचित है। प्रारम्भमें थोड़ा व्यायाम करना चाहिये। फिर क्रमशः बढ़ाना चाहिये। संसार-प्रसिद्ध प्रोफेसर राममूर्ति ने नीचे लिखे उपदेश लिखे हैं:—

१—व्यायामका अभ्यास धीरे-धीरे करना चाहिये, एकदम बढ़ा देना ठीक नहीं है।

२—जो व्यायाम किया जाय, वह बहुत धीरे-धीरे अंगों पर पूरा जोर डालकर करना चाहिये। जलदी-जलदी व्यायाम करनेसे कोई लाभ नहीं।

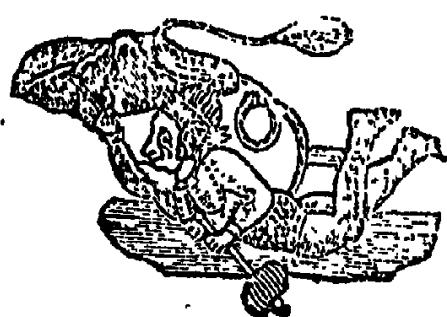
३—व्यायामको प्राणायामके साथ मिलाकर करना चाहिये । श्वास-प्रश्वासकी क्रिया नाकसे ही करना चाहिये, मुखसे करना अत्यन्त हानिकारक है । केवल व्यायामही के समय नहीं बल्कि हर समय । इस प्रकारसे साँस छोड़ो और बाहर रोको तथा धीरे-धीरे बाहर उसे खूब रोको । सीनेमें साँस भरकर फिर व्यायाम करो । ऐसा करनेसे सीना चौड़ा हो जाता है । यथार्थतः बल वायुमें है । वायुको वशमें करनेसे मनुष्य बलवान् हो सकता है । इसलिये प्राणायामके साथ व्यायाम करनेका अभ्यास करना चाहिये ।

४—व्यायाम करते समय मनको स्थिर रखना चाहिये और मनमें यह समझना चाहिये कि इस क्रियासे हम बराबर बलवान् हो रहे हैं । हम भाँम तथा हनुमानके समान बलवान् हो जायेंगे । इनके चित्रोंको सामने रखना उत्तम है ।

५—व्यायाम कर चुकनेके बाद पाँच-सात मिनटतक धीरे-धीरे टहलना उचित है । उसके बाद ठंडाई पीनी चाहिये । ठंडाई—बादाम १०, धनिया १ माशा, काली मिर्च ५ दाने, इलाइची छोटी २—इन सब चीजोंको शामके बक्त थोड़ेसे जलमें भिगोकर रख देना चाहिये । व्यायामके बाद ठंडाई तैयार करके ऊपर से थोड़ी-सी मिश्री मिलाकर पीना चाहिये । इस ठंडाईसे कसरतके पीछे होनेवाली खुशकी दूर हो जाती है । सर्दीके दिनोंमें ऊपर लिखी हुई चीजोंमें थोड़ी सोंठ मिला लेना चाहिये । धीरे-धीरे दो-दो बढ़ाने चाहिये और एक सेर तक बढ़ा देने चाहिये । उसी इह सावसे अन्य चीजें भी बढ़ा लेनी चाहिये ।

६—व्यायाम करनेवालोंको माँस नहीं खाना चाहिये । क्योंकि इससे सुस्ती, क्रूरता तथा अनेक दुर्गुणोंकी वृद्धि होती है । सात्त्विक भोजन करना ही व्यायाममें लाभदायक है ।

अब ऊपरके नियमोंको पढ़कर पाठकगण व्यायामका रहस्य समझ सकते हैं । कारण यह कि ऊपरकी बातें उस महापुरुषकी वतलायी हुई हैं जो कलियुग का भीम समझा जाता है और वास्तव में ही भी । अतः ब्रह्मचारियोंको ऊपरकी बातोंसे पूरा लाभ उठाना चाहिये । इस प्रकार प्रत्येक ब्रह्मचारीको व्यायामकी ओर भी मुक्तना चाहिये । व्यायामके बहुतसे भेद हैं । जैसे—तैरना; दण्ड-बैठक करना, जोड़ी फेरना, दौड़ना, कुरती लड़ना, टहलना आदि । ऊपर जो व्यायामके सम्बन्धमें लिखा है, वह दण्डबैठकके सम्बन्धमें नियम है । किन्तु ब्रह्मचारीको कमसे कम दोचार तरहका थोड़ा-थोड़ा व्यायाम अवश्य करना चाहिये ।



छठा प्रकरण

स्तु श्रीनृसिंहर्व
श्रीनृसिंहर्व श्रीनृसिंहर्व

छ लोगोंका कथन है कि कन्याओंके लिए शालमें
कु हिं ब्रह्मचर्य धारण करके विद्याध्ययन करनेकी आज्ञा
नहीं दी गयी है। लिंगोंको वेद नहीं पढ़ना चाहिये,
क्योंकि वे शूद्र हैं। पर यह उनकी भूल है। क्योंकि श्री-पुरुष
दोनों ही मनुष्य हैं। एक ही सत्तासे दोनोंकी उत्पत्ति है और दोनों
ही उसीके प्रतिरूप हैं। इसपर यह प्रश्न किया जा सकता है कि
एक ही सत्ताके रूप होते हुए भी क्रिया और धर्म-भेद से उनमें
भेद-भाव कहाँ से आया ? दोनों भिन्न-भिन्न कैसे हो गये ?
यद्यपि श्री और पुरुषकी शिक्षा और साधनका एक ही उद्देश्य
है और वह है मनुष्यत्वका उद्वोधन तथा उपको सार्थकता,
पर एक ही उद्देश्य होते हुए भी दोनोंका गन्तव्य मार्ग एक नहीं
है। संसारकी एकता जिस तरह सत्य है, उसकी विचित्रता या
अनेकता भी उसी तरह सत्य है वहिक यों कह सकते हैं
कि इस संसारकी विचित्रताने ही संसारको संसार कहलाने
के योग्य बनाया है। पार्थक्य और विशेषतामें ही विश्वका

रहस्य है और इसीमें उसकी सार्थकता भी है। हमलोग कभी-कभी विश्वको एक मान लेते हैं; किन्तु उसमें हमारी अभिप्राय एकता की प्राप्ति नहीं रहती बल्कि हमें उसमें कामकी सुविधा दिखानी पड़ती है। पर इससे न तो सत्यकी रक्षा ही होती है और न सृष्टिके गूढ़ उद्देश्योंकी सिद्धि ही। इसीलिए हमारे हृदयमें यह प्रश्न उठता है कि पुरुष और खीकी विशेषता कहाँ है। मनुष्य सत्ताका कौन भाव और कौन अंग पुरुष है तथा कौन भाव और कौन अंग खी है ?

वास्तवमें मनुष्य-सत्ताके दो भाग हैं, ज्ञान और शक्ति। मनुष्य पहले तो जाननेकी चेष्टा करता है, फिर कहनेकी चेष्टा करता है। जाननेकी चेष्टा ज्ञान है और कहना शक्ति है। एक सत्ता और भी है, जिसे हम प्रेम कहते हैं। यही प्रेम दोनोंका आश्रय-स्थान है। दोनों इसी प्रेमके सहारे चलते हैं। ज्ञानका प्रकाश मन या बुद्धि-द्वारा होता है और इसका केन्द्र मस्तिष्क है तथा शक्तिका प्रकाश प्राणोंमें होता है। इससे सिद्ध होता है कि पुरुष ज्ञान है और खी शक्ति है।

संसारके जीवनकी सामग्रियोंपर खीका जितना अधिकार है, पुरुषका उतना नहीं। ज्ञान-बुद्धिद्वारा वस्तुओंका ज्ञान भले ही कर लिया जाय, पर उसके प्रयोगके लिए शक्तिकी आवश्यकता है। इस काममें नारीकी योग्यता सबसे बढ़कर है। वस्तुओंके सजानेमें नारीकी योग्यता सबसे बढ़कर होती है। देखनेमें मालूम होता है कि वस्तुओंके साथ उसका अद्भुत प्रेम है। उसके हाथमें पड़ते

श्री वस्तुओंफी सजावट इस तरह हो जाती है, मानो किसीने जादू कर दिया हो। किन्तु पुरुप इतना कर सकता है कि वस्तुका निरीक्षण करके सोच-समझकर उनकी रचना तथा सजावटका ढंग धना सकता है, पर स्त्रीकी भाँति उसे कार्यरूपमें परिणत नहीं कर सकता। यदि करनेकी घेटा भी करता है तो उसको पूरा करनेमें उसे अपना सारा बल लगाना पड़ता है। यही कारण है कि पुरुप-शरीरकी रचना भिन्न ढंगसे हुई है अर्थात् मोटी हड्डी, स्थूल सौंस और कड़ा शरीर। पर नारी इन सबसे कम नहीं, वह किसी भी वस्तुका संचालन शारीरिक बलद्वारा नहीं करना चाहती। शारीरिक बल-प्रयोगमें एक तरहका धनावटीपन है—कर्ता और करणका द्वन्द्व और द्वैतभाव है। पुरुपोंके मस्तिष्कने उसकी प्राण-शक्तिको निप्रयोजनीय बनाकर उसे वस्तुसे अलग कर दिया है, पर स्त्री की शक्तिने उसको वस्तु में बाँधकर रखा है। यही कारण है कि स्त्री अपनी त्वाभाविक धातुरीद्वारा जिन वस्तुओं का संचालन करती है उसीका लंचालन पुरुप को बलद्वारा करना पड़ता है। इस स्थूल-संसारसे संप्राप्त करनेके लिये नैपोज़ियनको स्कूलमें व्यायाम आदि द्वारा अपनी ताकत धड़ानी पड़ी थी, पर आर्ककी देवी जोन को इस तरहकी कोई भी बात नहीं करनी पड़ी थी।

पुरुपके शरीरमें ताकत भले ही अधिक हो, पर स्त्रीकी शक्ति उससे बलवती होती है। पुरुप-शरीरमें बलकी घुलता होती है और स्त्री-शरीरमें शक्तिकी अनवरत धारा बहती रहती है। यही कारण है कि स्त्रीको धाहरी बलकी सहारा लेनेका जखरत नहीं.

—॥७॥

पढ़ती। पुरुषमें घड़चलता अधिक होती है और स्त्रीमें धीरता और स्थिरता अधिक होती है। पुरुष जो कुछ कहता है, वह जवानसे कहता है; पर स्त्री जो कुछ कहती है, हृदयसे कहती है।

समाज, स्त्रीको केन्द्र बनाकर प्रतिष्ठा करता है। इसलिए इस विश्वके दो भाग हैं। पर इसका यह मतलब नहीं कि दोनों दो और, एक दूसरेसे बिल्कुल भिन्न होकर रहते हैं। पुरुष और स्त्री ये दोनों भाग वैसे ही हैं जैसे किसी गोल वस्तुको बीचसे काटकर किये हुए दो भाग होते हैं। कुछ लोगोंकी धारणा है कि समाजमें केवल एक स्थानपर आकर पुरुष और स्त्रीका साधारण संयोग होता है, नहीं तो वे हर तरहसे एक दूसरेसे अलग हैं। इसी धारणाका फल है कि पुरुष और स्त्रीके बीच एक विचित्र विषमता उत्पन्न हो गयी है और लोग यह कहने लग गये हैं कि स्त्रीको वेद पढ़ने, ब्रह्मचर्य धारण करनेका अधिकार नहीं है। लिखा है:—

“ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्”

—अथर्ववेद ।

अर्थात् ब्रह्मचर्यका पालन करनेके बाद कन्या अपने योग्य युवक पतिको प्राप्त करती है।

यदि हम अपनी दुष्टिसे विचार करते हैं, तब भी यही बात उचित जँचती है कि पुरुष-स्त्रीको ईश्वरकी ओरसे समान अधिकार है। दूसरी बात यह भी है कि स्त्री-समाज पर ही पुरुष जातिकी उन्नति और अवनति निर्भर है। क्योंकि जन्म देनेवाली बियाँ ही हैं। शास्त्रकारोंका वचन है कि—“नास्ति मातृ समो-

गुरुः” अर्थात् माताके समान गुरु संसारमें कोई नहीं है। जितनी शिक्षा वालक मातासे प्रहरण करता और कर सकता है, उतनी और किसीसे भी नहीं। इसलिए माताका शिक्षिता होना बहुत जल्दी है। अतः जब तक कन्याओंको शिक्षा नहीं दी जायगी, तबतक वे माता होनेपर अपने बालकोंको कैसे शिक्षा दे सकती हैं?

इससे यहाँ निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कन्याओंको ब्रह्मचारिणी रद्दकर विद्याभ्यास करना चाहिये। इसके लिए वेदकी भी आवश्या है और विचार-दृष्टिसे देखनेपर भी इसीकी सिद्धि होती है। खियोंकी शिक्षाके बिना देशजी उन्नति होना असम्भव है।

अब यह देखना चाहिये कि खियोंकी शिक्षाका काल क्या है, और वह किस ढंगकी होनी चाहिये। खांके शरोरमें साधारणतया ११-१२ वर्षको अवस्थामें रजको उत्पत्ति होती है और वह रज १६ वर्षकी अवस्था में परिपक्व हो जाता है इसलिए रजके उत्पन्न होने के समय सेलेकर परिपक्व होनेके समय तक उन्हें ब्रह्मचारिणी रद्दकर विद्या पढ़नी चाहिये। बाद योग्य पतिके साथ विवाह करके गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये और पति-द्वारा विद्या पढ़नी चाहिये।

कुछ लोग कहेंगे कि विद्याध्ययनके लिए यह काल तो बहुत ही कम है, खियोंको पुरुषोंके इतना समय क्यों नहीं दिया गया? यह विषमता क्यों? इसका कारण यह है कि खियोंकी वुद्धि पुरुषोंकी अपेक्षा बहुत ही प्रदर्श होती है। उनका प्रत्येक काम पुरुषोंकी अपेक्षा शीघ्र होता है। देखिये न, पुरुषका वीर्य २५ वर्ष

की अवस्थामें परिपक्व होता और युवावस्था पुष्ट होती है, किंतु स्त्रियोंका रज १६ वर्षकी अवस्थामें परिपक्व हो जाता है और वे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने योग्य हो जाती हैं। इसीसे १६ वर्ष की कन्याके लिए कमसे कम २५ वर्षका ब्रह्मचारी वर होना चाहिये, ऐसा शास्त्रकारोंका आदेश है। क्योंकि १६ वर्षकी कन्या का रज उतना ही पुष्ट होता है जितना कि २५ वर्षकी अवस्थावाले पुरुषका वीर्य। इससे यह साधित होता है कि यह प्राकृतिक वृद्धि स्त्रियोंमें है। अतएव वे अल्प समय में ही बहुत पढ़ालिख सकती हैं। दूसरी बात यह भी है कि उनके विद्याध्यनका काल यहाँ तो समाप्त हो नहीं जाता, वे पतिदेवके पास भी तो पड़ालिख सकती हैं। जिन लोगों को कन्या-पाठशालाओंके निरीक्षणका सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा, वे लोग इस बातको अच्छी तरहसे जानते होंगे कि कन्यायें कितनी कुशाप्र वृद्धिकी होती हैं, अतः इसपर विशेष कुछ लिखना व्यर्थ है।

“काम-शमनके उपाय”

यह कामदेव रूपी शत्रु बढ़ा ही बलवान् है। इस पर विजय पाना साधारण काम नहीं। जो मनुष्य एक बार इसके फेरमें पड़ जाता है या एक बार इसका स्वाद मालूम हो जाता है, उसे सैकड़ों चपटेरोंसे भी नहीं समझाया जा सकता। शाक-पातंखाकर रहने-वाले बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियोंको भी इसके चक्करमें आ जाना पड़ा था। इसलिए इस शत्रु पर विजय पानेके लिए सबसे सरल

उपाय तो यह है कि शरीरमें इसकी उत्पत्ति ही न होने दे । तात्पर्य यह है कि इस पुस्तक में बतलाये गये नियमोंपर चलकर कामदेवको शान्त रखे । मनको विषयोंकी ओर कभी न ले जाय, ऐसा करनेसे इसका कोई वश नहीं चल सकता । इसपर भी यदि यह अपना प्रभाव दिखावे और उन्मत्त बनाकर अनर्थ करना चाहे तो मनुष्यको नीचे लिखे उपायोंसे इसे शान्त करना उचित है:—

१—ऐसे समयमें मनुष्यको थोड़ा व्यायाम करना चाहिये । दौड़ना चाहिये, किसी घच्छे आदमीके पास बैठकर उपदेशप्रद बातोंमें मन लगाना चाहिये ।

२—थोड़ासा ठंडा पानी पी लेना चाहिये और मनमें किसी उत्तम बात का स्मरण करना चाहिये ।

३—शरीरमें उत्तेजना होनेपर फौलन ठंडे पानीसे स्नान कर लेना चाहिये । इससे भी काम का बैग ढीला पड़ जाता है ।

४—उत्तम ग्रन्थका पाठ करनेमें लग जाना भी वृत्तिको शान्त कर देता है और मनुष्यका वीर्यनाश नहीं होता ।

५—अपने किसी मृत स्त्रीका स्मरण करके मनके बैगको रोक देना चाहिये ।

ऐसे ही और भी बहुतसे प्रयत्न हैं, जिनके द्वारा मनुष्यकी इस प्रवल शत्रुसे रक्षा हो सकती है । इसलिए ऐसे उपायोंद्वारा मनुष्यको बचना चाहिये । हर समय वीर्यकी रक्षा करनेका हड़ संकल्प करके ईश्वर-चिन्तन करते रहना चाहिये । जो मनुष्य अपने मनको ढीला छोड़ देता है, उसे इच्छापूर्वक विचरने देता है, वह धोखा खाता है ।

सातवाँ प्रकरण

गृहस्थाश्रममें प्रवेश

रीति से ब्रह्मचर्यका पालन करके मनुष्यको गृहस्थाश्रम में उमेर में प्रवेश करना उचित है। किन्तु गृहस्थीमें रहकर भी मनुष्यको ब्रह्मचर्यका पूरा पालन करते रहना चाहिये। गृहस्थी में रहकर ब्रह्मचर्यका पालन किस प्रकार से किया जाता है, यह इस प्रकरणमें अच्छी तरह से वरला दिया जायगा।

बात यह है कि जो मनुष्य गृहस्थीमें रहकर भी अपनी इन्द्रियोंके वशमें नहीं रहता, सब कामोंपर ध्यान देता है, साहसके साथ सब काम करता है, अपने मान और मर्यादाकी ओर सदा ध्यान रखता है, बुद्धिको सुंदर विचारोंमें लगा रखता है, किसीका अहित नहीं करता, दया और प्रेमको अपना भूपण बनाये रहता है, धर्मकी ओर प्रवृत्ति रखता है, वही सज्जा और उत्तम गृहस्थ है, वही गृहस्थीमें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन कर सकता है। किन्तु जो गृहस्थ इसके विपरीत आचरण करता है, वह नष्ट हो जाता है। बुद्धिको सदा विषयोंसे दूर रखना ही उत्तम है।

गृहस्थीमें रहकर मनुष्यको चाहिये कि वह खो-प्रसंग के बल

सन्तानोत्पत्तिकी इच्छासे करे और वह उस समय करे जब कि रजोदर्शन होनेके बाद खी शुद्ध हो जाय। इसके अतिरिक्त और कभी भी स्त्री-सम्मोग करना उचित नहीं। इस प्रकार नियमके साथ रहनेसे गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी मनुष्यको बहुत ही कम वीर्य-नाश करना पड़ता है। क्योंकि संयमी पुरुषके एक बार वीर्य-दानसे ही खी गर्भ धारण कर लेती है। गर्भ-स्थित हो जाने के बाद वीर्य-दानकी कोई जखरत नहीं रह जाती और फिर उस समय तक नहीं रहती, जबतक कि बच्चा पैदा होकर पाँच वर्षका नहीं हो जाता। इस प्रकार किसी संयमी मनुष्यको अधिक सन्तान उत्पन्न करनेके लिए भी जीवन-भरमें ५-७ बारसे अधिक वीर्य निकाल-लेकी जखरत नहीं पड़ सकती।

किन्तु इस रीतिसे निर्वाह करना साधारण काम नहीं है। आजकलके नवयुवक तो प्रतिदिन १-२ बार वीर्यनाश कर दिया करते हैं। ऐसी दशामें उन्हें उचित है कि उनसे ऊपरके नियमका पालन न हो सके, तो वे हर महीनेमें रजोदर्शनके बाद स्त्रीसह-वास कर सकते हैं, किन्तु उन्हें भी इस बातका अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि गर्भाधानके बाद स्त्री-प्रसङ्ग करना बन्द कर दें और बच्चा पैदा होनेके बाद कम-से-कम दो वर्षतक तो अवश्य ही स्थगित रखना चाहिये। यद्यपि यह उत्तम रीति नहीं है। गृहस्थ-जीवनको हम पाँच श्रेणी में विभक्त कर सकते हैं।

उत्तम गृहस्थ तो वह है जो केवल एकबार खीको वीर्यदान

देकर एक सन्तान उत्पन्न कर लेता है और फिर आजन्म वीर्यका नाश नहीं करता ।

मध्यम गृहस्थ वह है जो गर्भस्थित होनेके बाद स्त्री-सहवास त्याग देता है और जबतक बच्चा पैदा होकर पाँच वर्षका नहीं हो जाता, तबतक स्त्री-सहवास नहीं करता । बाद दूसरा गर्भस्थित करता है ।

तीसरी श्रेणीका गृहस्थ वह है जो प्रतिमास स्त्री-सहवास करता, पर दो-तीन मासका गर्भ होते ही उससे दूर हो जाता है और बच्चोंकी दो वर्षकी अवस्था होनेतक संयमसे रहता है ।

चौथी श्रेणीका गृहस्थ वह है जो प्रतिदिन अथवा दूसरे तीसरे दिन वीर्यका नाश किया करता है और किसी बातका संयम नहीं रखता । हाँ, परायी स्त्रीको बुरी निगाहसे नहीं देखता ।

पाँचवाँ श्रेणीका गृहस्थ वह है जो चौथी श्रेणीके गृहस्थकी भाँति वीर्यका नाशकरता है और पर-स्त्री-गामी भी होता है ।

इन पाँचों प्रकारके गृहस्थोंमें पहलेके तीन तो अच्छे हैं पर अन्तिम दो अत्यन्त नीच और पापी हैं । इसमें पाँचवाँ तो नीचसे भी नीच है । ये दोनों ही व्यभिचारी हैं । ब्रह्मचारी गृहस्थ इन्हें कदापि नहीं कहा जा सकता । उत्तम ब्रह्मचर्यका पालन करना बस ऊपरके दो ही गृहस्थोंमें पाया जाता है यानी एक उत्तममें और दूसरे मध्यममें ।

ब्रह्मचारीको यह बाद रहे कि विवाह आसामयिक मैथुनद्वारा इन्द्रिय-सुखके लिए नहीं है, बल्कि केवल सन्तानोत्पत्तिके लिए है ।

शास्त्रकारोंने कहा है कि दम्पति-नियमसे रहनेवाले गृहस्थ भी ब्रह्मचारी ही हैं। विवाह मानवी सूष्टि चलानेके जिए एक धार्मिक कर्तव्य है। इसका विधिवत् पालन करनेसे गृहस्थाश्रम सुख-शांति-का देनेवाला होता है। मनु महाराजने लिखा है:—

“ब्रह्मचार्यव भवति यत्रतत्राश्रमे वसन् ।”

अर्थात् ऋतुकालकी वर्जित रात्रियोंको छोड़कर स्नो-सहवास करनेवाला पुरुष चाहे जिस आश्रममें हो—ब्रह्मचारी ही है।

इससे सिद्ध होता है कि गृहस्थाश्रममें रहकर भी ब्रह्मचर्यका पालन किया जा सकता है और प्रत्येक मनुष्यको इसका पालन करना चाहिये। किन्तु आज हमारी वृत्ति ऐसी बिगड़ गयी है कि ये सब भाव ही हमारे दिलमें नहीं उठते और न हम इधर ध्यान ही देते हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि लोग रात-दिन विषयमें ग्रस्त रहते हैं किन्तु गर्भधान नहीं होता। यदि होता भी है तो रज-वीर्यको निर्वलताके कारण गर्भपात हो जाता है और यदि गर्भपात नहीं होता, किसी तरहसे सन्तान उत्पन्न ही हो जाती है तो वह अल्पायु, रांगी, निवेल और बुद्धिहीन होती है। इसलिए सौ में १० आदमी बच्चेके लिये शोकानुर देखनेमें आते हैं।

अतः सब लोगोंको ब्रह्मचर्यका पालन करके उचित रीतिसे गृहस्थीमें रहते हुए अमोघ-वीर्य बनना उचित है।

श्रीमोघ-वीर्य
 श्रीमोघ-वीर्य श्रीमोघ-वीर्य

अमोघ-वीर्य उसे कहते हैं जिसका वीर्य कभी भी विफल

न हो, गर्भाधान अवश्य हो जाय। अमोघ-वीर्य होनेके लिए विशेष कुछ नहीं करना पड़ता। वीर्यकी रक्षा करनेसे ब्रह्मचारीको यह सिद्धि अपने आप ही हो जाती है। जो मनुष्य २५ वर्षकी अवस्थातक वीर्यकी रक्षा नहीं करता और वीर्यकी अपरिपक्व-वस्थामें ही वीर्यका नाश करने लगकर उसे परिपक्व नहीं होने देता, वही अमोघ-वीर्य नहीं होता। किन्तु जो मनुष्य उक्त अवस्थातक वीर्यकी पूरी रक्षा करता है और वाद भी उसका अधिक अपव्यय नहीं करता, वह अमोघ वीर्य हो जाता है और आजन्म बना रहता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्यको अमोघ-वीर्य बनना चाहिये।

॥ ऊर्ध्वरैता ॥

बहुतसे ब्रह्मचारी ऊर्ध्वरैता हो जाते हैं। ऊर्ध्वरैता उसे कहते हैं जिसका वीर्य नीचे न उतरे और मस्तिष्कमें जाकर जमा हो। बहुत-ही कम लोग ऊर्ध्वरैता हुआ करते हैं। कारण यह है कि वीर्य जलरूप है और जलका बहाव साधारणतया नीचेकी ओर होनेके कारण वीर्य भी नीचेली ओर ही बहता है। परन्तु जब वीर्य नीचेकी ओर न आकर स्वाभाविक रीतिसे ऊपर जाने लगे तब मनुष्य ऊर्ध्वरैता कहा जाता है। इसमें मनुष्यको कुछ साधना करनेकी जरूरत पड़ती है। विना साधनाके इसकी सिद्धि नहीं होती। हाँ, कभी-कभी अपने आप भी यह सिद्ध हो जाता है, पर बहुत देरमें। और यदि किसी प्रकारसे इसके सिद्ध हुए विना ही

वीर्य नष्ट हो जाता है, तब तो इसकी सिद्धि असम्भव-सी हो जाती है। इसलिए यही कहना उचित है कि विना साधनाके इसकी सिद्धि नहीं होती।

३) उपवास ४)

अजीर्णसे शरीरमें अनेक रोग होते हैं। अजीर्णका नाश करनेके उपाय औपध सेवन नहीं है वहिक उपवास करना ही है। क्योंकि औपधियोंके सेवन करनेसे वीर्य में दोप पैदा हो जाता है और उपवास करनेसे वीर्य-दोपकी न्यूनता होती है। उपवाससे शरीर तो शुद्ध होता ही है, मन भी शुद्ध हो जाता है। लिखा भी है

‘आहारान् पचतिशिखी दोपान् आहार वर्जितः।’

अर्थात् अग्निसे आहार पचता है और उपवाससे दोप पचते हैं। हमारे धर्म-ग्रंथोंमें उपवासका बहुत बड़ा महत्त्व लिखा हुआ है। यहाँ तककि उसे धार्मिक कृतियोंमें स्थान देकर ‘ब्रत’ के नामसे प्रचलित किया गया है। उपवाससे शरीर और मन दोनोंको उन्नति है। उपवास करना, आत्मिक उन्नतिके लिए अत्यन्त उपयोगी है।

किन्तु उपवास या ब्रत करनेका यह अर्थ नहीं है कि उपवास करनेसे एक दिन पहले खुब डाटकर भोजन किया जाय और उपवासके दिन अनन्त तो न खाय लेकिन फलाहारी चीजें—जैघे, सिंघाड़ेका हल्लुआ और पूँझी, दूध, मलाई, रवड़ी, आदि खुब उड़ाई जायें। इस प्रकारके उपवाससे तो उपवासका न करना ही अच्छा है। उपवास करनेका यह मतलब है कि उसके एक दिन पहले

केवल एक वक्त भोजन करे और यदि क्षुधा अधिक मालूम हो तो शामको भी भोजन कर ले, पर बहुत हल्का। फिर उपवासके दिन कुछ न खाय, आवश्यकता पड़नेपर एकाधवार सिर्फ पानी-भर पी ले। ऐसा करनेसे कोष्ठ शुद्धि हो जाती है और जठराग्नि भी प्रब्लित हो जाती है। बाद पारणके दिन हल्का भोजन करे।

इस प्रकारके उपवाससे मनुष्यकी आत्मिक शक्ति बहुत बढ़ जाती है, अतः ब्रह्मचर्यके लिए उपवास अत्यन्त उपयोगी है; क्योंकि उससे इन्द्रियोंकी अनुचित प्रवलता नष्ट हो जाती है और मनमें स्वाभाविक ही पवित्रता आ जाती है। इसी उद्देश्यसे हमारे धर्म ग्रन्थोंमें प्रत्येक महीनेमें एकादशीके दो ब्रत लिखे गये हैं। जो लोग बहुत ही कोमल प्रकृतिके हों, वे पानीके अतिरिक्त दूध अथवा थोड़ा उत्तम फल भी उपवासमें खा सकते हैं।

उपवासके दिन मनुष्यको चाहिये कि वह चारों ओरसे अपने मनको खींचकर आत्मचिन्तनकी ओर लगावे, धार्मिक विषयोंकी चर्चा करे, उत्तम ग्रन्थोंका पाठ करे तथा साधु-महात्माओंके पास बैठकर उपदेश प्रहण करे। उस दिन नाटक, सिनेमा, ताश, शतरंज आदिमें अपने समयको भूलकर भी न गँवावे।

॥ खड़ाऊँ ॥ ○○○○○○○○○○

ब्रह्मचारीके लिये खड़ाऊँ पहनना बहुत ही लाभदायक है। इससे काम-वासनाओंका बहुत कुछ शमन होता है। बात यह है कि पैरमें अँगूठेके ऊपरी भागकी नससे और लिंगेन्द्रियसे बड़ा-

भारी लगाव है इसलिए खड़ाऊँके उपयोगसे ज्यों-ज्यों वह न स दृढ़ती है, त्यों-त्यों काम-वासना भी दृढ़ती जाती है। दूसरी बात एक यह भी है कि खड़ाऊँ पहननेसे पैर हरवक्त खुली हवामें रहते हैं, इससे तन्दुरुस्ती ठीक रहती है। यों तो मनुष्य अपने रोम-रोम से शुद्ध वायु को खींचता और भीतरकी दूषित वायुको बाहर निकालता है, पर नाकके बाद पैरका और मस्तिष्क-स्थान इस क्रियामें सबसे ऊँचा है। यही कारण है कि उसे पैरके द्वारा गर्भ-सर्दी बहुत जल्द असर पहुँचाती है। वहुधा देखनेमें आता है कि सर्दी होनेपर पैरके तलवेमें ही तेलकी मालिश करायी जाती है और वह समूचे शरीरमें अपना असर पहुँचाकर शीतको हर लेतो है। इससे सावित होता है कि पैरोंका खुली हवामें रखना तथा उनकी स्वच्छतापर विशेष ध्यान देना स्वास्थ्यके लिए बहुत ही आवश्यक है। इसलिए खड़ाऊँका पहनना बहुत उत्तम है।

किन्तु खड़ाऊँका अच्छा होना जखरी है। उसका अच्छापन या बुरापन उसकी खूँटियोंपर निर्भर है। जो लोग खड़ाऊँकी चाहरी चमक-दमकसे उसके अच्छे-बुरेपनका निर्णय करते हैं, वे भूल करते हैं। खड़ाऊँ सादा हो या नकाशीदार, इससे कोई मत-लब नहीं। सिर्फ यही देखना चाहिये कि खड़ाऊँमें खूब हल्कापन हो तथा उसकी खूँटियाँ ऐसी धनी हों कि गड़े न और सुखकर प्रतीत हों। खड़ाऊँ पहननेसे वीर्यकी रक्षा तो होती ही है, इससे ज्योति भी बढ़ती है। इसलिए ब्रह्मचारीको इससे लाभ उठाना चाहिये

॥ लँगोट बाँधना ॥
लँगोट बाँधना

ब्रह्मचर्यमें लँगोट बाँधना वडे फायदेका है। इससे कामकी उद्दिगता नष्ट होती है, मनमें वीरताका भाव पैदा होता है। अंड-कोष बढ़नेकी सम्भावना बहुत कम रह जाती है। किन्तु दोहरके पतले या मोटे कपड़ेका लँगोट वीर्यकी रक्षा करनेके लिए उपयुक्त नहीं। क्योंकि ऐसे लँगोटसे गर्भ पैदा होनेके कारण वीर्यका नाश हो जाता है। बहुतसे लोग यह समझते हैं कि लँगोट पश्चिमसे इन्द्रिय निर्वल हो जाती है; किन्तु ऐसा समझना भूल है। इससे इन्द्रिय निर्वल नहीं पड़ती बल्कि संयमसे रहनेके कारण बहुत सबल हो जाती है। हाँ इतना अवश्य होता है कि उसकी आत्माभाविक नाशकारी उत्तेजनाका नाश हो जाता है।

लँगोट सदा मुलायम और पतले कपड़ेका एकहरा पहनना उचित है। चौबीसों घण्टा एकदम कसकर नहीं बल्कि कुछ ढीलर रखना लाभदायक है। लँगोटको प्रतिदिन खूब अच्छी तरहसे मल-कर धोना चाहिये और धूपमें सुखाना चाहिये। ४-६ दिनपर सावुन से साफ कर देना और भी उत्तम है। अभिप्राय यह कि इसकी संफाईकी ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। काछके बख्तोंमें बहुत जरद बदबू होने लगती है।

॥ सूर्य-ताप ॥
सूर्य-ताप

प्रतिदिन सबेरे घरटेभर या कुछ कम धूपमें सूर्यको ओर मुख

करके शान्तिके साथ बैठना चाहिये । उस समय अपने मनमें ऐसी धारणा रखनी चाहिये कि मुझमें सूर्य भगवान् शक्तिका संचार कर रहे हैं । प्रातःकालीन सूर्यकी ओर मुख करके यदि हो सके तो दृष्टि भी सूर्यदेवके विम्बपर स्थित करनी चाहिये और मनःशक्तिके द्वारा शक्तिको खोंचकर अपने शरीरमें भरनेका उद्योग करना चाहिये । यदि दृष्टि स्थित न रह सके तो आँखें बन्द करके आसन लगाकर बैठना चाहिये । यह यौगिक क्रिया है । योगी लोग अपने मनोबलसे संसारमें शक्ति भरनेवाले भगवान् मुक्त-भास्करसे शक्ति लेते हैं । इसलिए ब्रह्मचारीको भी इस क्रियासे अवश्य लाभ उठाना चाहिये ।

सूर्यतापन्सेवनसे हर तरहके रोगोंकी शान्ति होती है । इसीसे अच्छे चिकित्सक लोग रोगियोंको प्रकाश-पूर्ण कमरेमें रखनेके लिए परामर्श देते हैं । कारण यह कि प्रकाश-पूर्ण कमरेमें सूर्यकी किरणें आती हैं, जहाँ सूर्यकी किरणें न आवेगी, वहाँ प्रकाश रही नहीं सकता । अतएव रोगीका रोग दूर करनेमें उन किरणों द्वारा अप्रत्यक्ष रूपसे बहुत बड़ी सहायता मिलती है । जो लोग इसका अनुभव करता चाहें वे इस क्रियाको करके देख सकते हैं । देखिये न, शहरोंमें बड़ी बड़ी अट्टालिकाओंके कारण काफी प्रकाश नहीं आता, इसलिए शहरके रहनेवाले पीले पड़ जाते हैं और रोगी भी हो जाते हैं—सो भी बहुत कुछ प्रकाश उन्हें मिलता है, यदि न मिले तो जीना ही असम्भव हो जाय; किन्तु धूपमें काम करनेवाले देहाती हट्टे-कट्टे और नीरोग होते हैं । सूर्यकी किरणों द्वारा

ही अन्न और फलोंमें रस पैदा होता है और वे पकते हैं; सूर्यकी किरणोंसे ही पौदे बढ़े होकर खड़े रहते हैं। जब पौदोंको सूर्यकी किरणोंसे इतनी शक्ति मिलती है, तब मनुष्यको क्योंकर शक्ति नहीं मिलेगी ?

सूर्य-ताप-सेवन करते समय घटनको खुला रखना आवश्यक है। इससे जीवनी शक्ति बढ़ती है, रोग दूर होते हैं, मानसिक शक्तिकी वृद्धि होती है, शरीर बलवान् होता है, वीर्य पुष्ट होता है, कान्ति बढ़ जाती है, चेहरा तेजमान हो जाता है, चित्तमें प्रसन्नता आती है और विचारोंमें पवित्रता तथा उच्चता आ जाती है।

॥ प्राणायाम ॥ ॥४७॥

मनुष्यमात्रके लिए प्राणायाम करना बहुत जरूरी है। किन्तु आजकल नाना प्रकारके दुष्ट व्यसनोंके कारण लोगोंके शरीर ऐसे शक्तिहीन हो गये हैं कि वे कुम्भकके साथ थोड़ासा भी प्राणायाम नहीं कर सकते। कुम्भक प्राणायाम करनेसे बहुतसे लोग अनेक तरहकी शिकायतें करते रहते हैं, पर वास्तवमें इसका दोष प्राणायामपर लगाना उचित नहीं है। यह दोष प्राणायाम करनेवालोंके वीर्यनाश करनेका है। इसपर स्वाध्याय मण्डलसे प्रकाशित 'आसन' नामकी पुस्तकमें लेखकने लिखा है कि, "दस-पन्द्रह वर्षोंके सूक्ष्म निरीक्षणसे जो बातें मालूम हुई हैं, उनका सारांश लिखता हूँ। प्राणायाम करनेवाले अपनो पूरी तैयारी करके नहीं प्राणायामका अभ्यास शुरू करें।

जो स्वयं जन्मसे मांसाहारी हैं और विशेषतः जिनके बाप-दादा भी मांसाहारी अर्थात् अधिक मांसाहारी रहे हैं, उनको कुम्भक प्राणायामसे विविध प्रकारके कष्ट होते हैं। छातीमें, पसलियोंमें दर्द होता है, पेटमें गड़वड़ी उत्पन्न होती है, सिरमें नाना-प्रकारके विकार उत्पन्न हो जाते हैं। विशेषतः श्वास-दमा आदिका प्रकोप होता है। इसका कारण यह है कि मांसाहारी कुलमें जन्म होनेके कारण अथवा अपने शरीरके सब परमाणु मास भोजनके कारण खून, मज्जातन्तु तथा फेफड़ोंमें विशेषतः और सब शरीरमें साधारणतः प्राणशक्तिके धारण करनेका बल ही नहीं रहता है। प्राणशक्तिका बल सबसे अधिक है, अतः जब उसको स्वाधीन करनेका यत्न किया जाता है, तब वह शक्ति शुद्ध होकर प्रतिबन्ध-को तोड़ना चाहती है। मांसभोजी लोग मसाले आदि उत्तेजक-पदार्थ बहुत खाते हैं, इसलिए उनके शरीरके परमाणुओंमें प्राण-धारक शक्ति कम होती है। मांसके साथ मद्यका सेवन करनेवालोंमें और जिनमें आनुवंशिक यानी पुत्रैनी मद्य-पान शुरू है, उनमें तो बहुत ही हीन अवस्थामें प्राणधारक शक्ति रहती है। ऐसे लोग जिस समय अपने प्राणको रोकना चाहते हैं, उस समय वह उसको ही ताड़ना देता है और शरीरका जो भाग कमज़ोर रहता है, उसीमें विगाढ़ होने लगता है। अतएव ऐसे लोगोंको प्रारम्भमें उत्तम पथ्य करना चाहिये और पश्चात् प्राणायाम शुरू करना उचित है।

मांस-भोजनसे यद्यपि शरीर बड़ा पुष्ट होता है तथापि सौमें-

छत्तीस ऐसी बीमारियोंकी स्वभावतः सम्भावना उनके शरीरमें रहती है, कि जो रोग फलभोजियोंको कभी होते ही नहीं। इसलिए दौड़ना, तैरना, अथवा दीर्घ कालतक कोई कार्य करना, जिसमें कि प्राणशक्तिकी स्थिरताकी आवश्यकता रहती है, ऐसे कामोंमें मांसभोजी लोग हमेशा फलभोजियोंके पीछे रहते हैं। यही कारण है कि ऐसे लोगोंसे कुम्भक नहीं होता और बलपूर्वक करनेसे हानि पहुँचाता है।

गाँजा, भाँग, अफीम, चरस आदि भयंकर व्यसनोंमें लिप्त रहनेवालोंके लिए कुम्भक प्रायः अशक्य ही है। तमाखू खानेपीनेवालोंके शरीरमें रक्त दोप बहुत होता है, तथा तमाखूका व्यसन जन्मभर करनेवालोंकी सन्ततिमें खूनकी बीमारी, मज्जा-तन्तुओंकी कमज़ोरी और हृदयकी निर्वलता जन्मसे ही रहती है। यही कारण है कि इनलोगोंसे कुम्भक प्राणायाम नहीं होता तथा बलपूर्वक करनेसे हृदयकी कमज़ोरी बढ़ जानेकी सम्भावना होती है। न्यूनाधिक व्यसनके कारण न्यूनाधिक परिणाम भी होता है। यदि माता-पिता बहुत बलवान हुए तो उनका व्यसनोंका बुरा परिणाम उतना नहीं होता, जितना कि कमज़ोर मनुष्योंपर। तमाखू पीनेवालेके शरीरपर तो कम असर होता है, पर उसके बीर्यमें बहुत खराबी पैदा हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि, उनकी सन्तानें जन्मसे ही बीर्य-दोष-युक्त और कमज़ोर-हृदय होती हैं।

इसलिए प्राणायामका अभ्यास शुरू करनेवालोंको सबसे पहले पथ्य द्वारा अपनी हीन परिस्थितिका सुधार करना चाहिये। पथ्य

यह है,— १—मांस खाना छोड़ देना चाहिये । २—चटपटी तथा मसालेदार चीजोंको कम करते-करते एकदम त्याग देना चाहिये । ३—सात्विक भोजन करना तथा फलोंका अधिक सेवन करना चाहिये । ४—गायका दूध पीना चाहिये; क्योंकि गायके दूधमें प्राणधारक शक्ति अधिक होती है । ५—रहन-सहनमें सादगी लानी चाहिये । इस प्रकार न्यूनाधिक दोपोंके अनुसार एक वर्षसे तीन वर्ष तक पथ्य करके शरीरका सुधार करना उचित है । बाद नीचे लिखे 'समवृत्ति प्राणायाम' का अभ्यास शुरू करना चाहिये ।

'समवृत्ति प्राणायाम' वह होता है जिसमें आन्तरिक और बाह्य कुम्भक नहीं होता । समगतिसे तथा मन्द वेगसे श्वास और उच्छ्वास चलते रहते हैं । पहले श्वासकी गतिको मन्द करना चाहिये, बाद श्वास-प्रच्छ्वासको समान करना चाहिये । श्वासो-च्छ्वासकी समानता गिनतीसे अथवा ओंकारके जपसे की जा सकती है अर्थात् यदि दस तक गिनती पूरी होनेपर आप श्वास खांचें तो दस तक गिनती पूरी होने तक आप प्रच्छ्वास भी करें । इसमें किसी प्रकार भी प्राणशक्तिपर बलका दबाव न डालकर बिलकुल आसानीसे करना उचित है । इस प्रकार दो सप्ताह करनेके बाद एक अंककी संख्या बढ़ानी चाहिये । क्रमशः पन्द्रहके बाद एक अंककी संख्या बढ़ाते हुए बलावलके अनुसार २० या २४ की संख्या तक बढ़ाया जा सकता है ।

श्वासोच्छ्वासकी गति इतनी मन्द रहे कि आवाज ज़रा भी न हो । उच्छ्वासके समय पेटको बिलकुल खाली कर देना चाहिये ।

श्वास लेनेके समय पहले फेफड़ोंके नीचेका भाग जो कि पेटके पास होता है, भरना चाहिये और बाद क्रमशः ऊपरके भागोंमें भरना चाहिये । श्वास भरते समय अथवा उच्छ्वास करते समय किसी प्रकारका धक्का नहीं लाना चाहिये ।

दमा और श्वासके रोगी तथा कमज़ोर फेफड़ेवाले यदि अपनी शक्तिके अनुसार गर्भके दिनोंमें इस प्राणायामको शुरू करें तो वे रोगमुक्त हो सकते हैं । यदि किसी प्रकारकी वीमारीमें इस प्राणायामका प्रारम्भ करना हो तो गर्भ हृवामें करना उचित है । ठण्डी हृवामें करना अच्छा नहीं है ।

इस प्रकारसे प्राणायामका अभ्यास प्रत्येक मनुष्यको करके अपने प्राणायामका बल बढ़ाना चाहिये । खासकर ब्रह्मचारीको तो अवश्य ही इसका अभ्यास करना चाहिये । प्राणायामसे वीर्यकी रक्षा करनेमें जितनी सहायता मिलती है, उतनी और किसी भी चीज़से नहीं मिलती । मनु महाराजने लिखा है :—

दद्यन्तेऽध्माय मातानाम् धातूर्जां च यथा मता ।

तथेन्द्रियाणामदद्यन्ते दोपाः प्राणस्य निप्रहात् ॥

अर्थात् जिस प्रकार स्वर्ण आदि धातुओंका मल अग्निमें तपाने से जल जाता है, उसी प्रकार इन्द्रियोंके दोष प्राणायामसे दग्ध हो जाते हैं ।

प्राणायामसे फेफड़ोंमें शक्ति बढ़ती है जिससे रुधिर अधिक मात्रामें शुद्ध होता है अतएव शरीर अधिक आरोग्य और बलवान् बन जाता है । प्राण ही महाशक्ति है । इसके जीतनेसे सब कुछ

जीता जा सकता है। इसके द्वारा मनुष्य बड़े-बड़े पराक्रमके काम कर सकता है। प्राणायामके ही प्रभावसे प्रोफेसर राममूर्ति ने लोहेकी सीकड़ तोड़कर, मोटर रोककर तथा मनुष्योंसे लदी गाड़ीको छातीपर चढ़ाकर संसारको चकितकर दिया था। वरौदाके बाल ब्रह्मचारी प्रो० माणिकरामजी ब्रह्मचर्य और प्राणायामके प्रतापसे ही व्यायामशाला खोलकर नवयुवकोंको अनेक तरहकी योग, मल्ल तथा शक्षादि विद्याओंकी शिक्षा बड़े उत्साह और योग्यताके साथ देकर भारतवर्षमें पथ-प्रदर्शक हो रहे हैं। प्रत्येक विद्यार्थीको प्रो० माणिकरावजीका अनुकरण करके गाँव-गाँवमें व्यायामशालाएँ खोल कर लोगोंमें खूब प्रचार करना चाहिये और देशके नवयुवकोंको खूब हृद ब्रह्मचारी तथा साहसी बनाना चाहिये।

आसन

यों तो आसन बहुत तरह के होते हैं और प्रायः सभी उपयोगी हैं, पर दो आसन ब्रह्मचारियों के लिए विशेष लाभदायक हैं। आसनोंके अभ्याससे शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है और शीत्र कोई रोग नहीं होता। शरीर में कोमलता, लचीलापन तथा चिकनाहट आती है। दस्त भी खूब साफ होता है। पेट की सारी शिकायतें दूर हो जाती हैं। कभी उपवास करनेकी जरूरत नहीं पड़ती; कारण यह कि भोजन अच्छी तरहसे हजम होता जाता है और

ठिकानेसे भूख लगती है। उत्पन्न हुए धातु-विकार भी एकदम नष्ट हो जाते हैं। इसलिए प्रत्येक ब्रह्मचारीको और नियमोंके साथ कमसे कम दो आसनोंका अभ्यास तो अवश्य ही करना चाहिये। क्योंकि ये वीर्य-रक्षाके लिए बहुत ही लाभदायक हैं।

॥ शीर्षासन ॥

इसका दूसरा नाम कपाली आसन भी है। इसमें नीचे सिर और ऊपर पैर किये जाते हैं। नये अभ्यासीको पहले दीवारके सहारे करना चाहिये। दीवारके पास चार-छः अंगुष्ठ भोटा गदा बिछा देना चाहिये। बाद उसी गदे पर सिर रखकर दीवारके सहारे दोनों पैरोंको ऊपर उठाना चाहिये। शरीर विलकुल सीधा रहे। इस प्रकार पहले आधे मिनट तक ठहरना उचित है। आठ-दस दिनके बाद एक मिनट फिर दो मिनट, महीने भर बाद पाँच मिनटका अभ्यास कर देना चाहिये। इसी प्रकार क्रमशः बढ़ा-कर आध घण्टेका अभ्यास करना चाहिये। इससे अधिक अभ्यास बढ़ानेकी जरूरत नहीं।

आसनोंका अभ्यास खुली जगहमें या हवादार कमरेमें करना अधिक लाभदायक है। इसके अलावा अभ्यासके समय पेट भी खूब हल्का रहना चाहिये। इसलिए प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होकर बिना कुछ खाये यदि ब्रह्मचारी लोग आसनका अभ्यास करें, तो विशेष उत्तम हो। वास्तवमें अभ्यास करनेका यही समय भी

है। भोजनके बाद तो भूल कर भी अभ्यास नहीं करना चाहिये। क्योंकि ऐसा करनेसे स्वास्थ्य विगड़नेकी सम्भाषना रहती है।

अधिक अभ्यास हो जाने पर दीवारके सहारे रहनेकी जखरत नहीं पड़ती। अनुमानतः एक महीनेमें अभ्यासी निराधार खड़ा होने लग जाता है। इस आसनके अभ्याससे सैकड़ों तरहके रोग तो दूर हो ही जाते हैं, साथ ही वीर्यका प्रभाव भी ऊपरको हो जाता है; अतः दिमागी ताकत बहुत बढ़ जाती है। कोई भी मनुष्य महीने भरके अभ्याससे इस आसनका गुण बहुत कुछ जान सकता है। सिर-दर्द आदिके लिए तो यह आसन जादूका-सा काम करता है। यदि सिरमें पोड़ा होता हो, तो शीर्षासन करो; कौरन ही सिरकी पीड़ा हवा हो जायगी। यह अनुभूत बात है।

शीर्षासनसे भूख बढ़ जाती है। इसलिए शीर्षासन करने-चालेको धी-दूधका अधिक सेवन करना चाहिये। नहीं तो पेट अग्नि से जलने लगता है। शीर्षासन करनेके घरटे भर बाद बड़ी ही मजेदार भूख लगती है।

इससे स्वप्नदोषका होना बहुत जल्द रुक जाता है और कुछ दिनोंके बाद तो वीर्य, शरीरमें ही खपने लग जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि समूचा शरीर ही वज्रके समान ढढ हो जाता है। नेत्रोंकी ज्योति भी बढ़ जाती है। नोंद भी बड़ी अच्छी आने लगती है। शीर्षासन करने के बाद ही शरीरमें ऐसे आराम और शान्तिका अनुभव होता है कि तबीयत प्रसन्न हो जाती है।

शीर्षासनसे प्राणकी गति स्थिर और शान्त होने लगती है।

अपने आप ही प्राणायाम होने लगता है। इस समय प्राणायाम करनेकी स्वयं चेष्टा कदापि न करनी चाहिये। शीर्षासन करनेके बाद अपनी इच्छा के अनुसार प्राणायाम करना चाहिये। यह आसन करते समय केवल मनको स्थिर और शान्त रखनेका प्रयत्न करना चाहिये और कुछ भी नहीं। शीर्षासनके बाद स्वयं साँस रोकनेकी इच्छा होती है और विना किसी प्रकारके कष्टके श्वास देरतक रुकने लगता है। शीर्षासनसे रक्तकी शुद्धि भी हो जाती है; क्योंकि समूचे शरीरका रुधिर मलोंको लेकर फेफड़े में पहुँचता है और रक्तकी शुद्धि फेफड़ेमें ही होती है।

कुछ अभ्यासियोंका तो यहाँतक कहना है कि केवल शीर्षासन तथा उसके साथ और बादके प्राणायामसे भी अभ्यासी समाधि तक आसानी से पहुँच सकता है। कई योगाभ्यासियोंका कथन है कि प्रतिदिन तीन घंटा शीर्षासन या कपाली मुद्राके अभ्याससे सब कुछ सिद्ध हो जाता है। इसका कारण यही है कि शीर्षासनसे प्राण अन्दर खिंचने लगता है। इसलिए ब्रह्मचारी या ग्रहस्थ-ब्रह्मचारी सबको इस आसनका अभ्यास नियम-पूर्वक अवश्य करना चाहिये। किन्तु इनको इतना अधिक अभ्यास बढ़ानेकी जरूरत नहीं है; केवल आधा घंटा प्रतिदिन करना ही यथेष्ट है। यह आसन बहुतसे रोगोंपर तुरन्त ही अपना गुण दिखला देता है। अभ्यास करनेसे तथा रोगियोंपर आजमानेसे सब अनुभव अपने-आप ही हो जायगा, अधिक लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

इस आसनसे इतना लाभ क्यों होता है, यह भी सुनिये । जब हम एक ही अंगपर अधिक देरतक सोते अथवा बैठते हैं, तब वहाँसे उठनेके समय हम स्वभावतः विरुद्ध दिशासे शरीरको खींचते हैं और उस खिंचावमें सुखका अनुभव करते हैं । यह बात पश्चात्यामें भी पायी जाती है । एक ही अंगपर अधिक देरतक रहनेसे जो खून वहाँ जम जाता है, उसे फाड़नेके लिए या दटानेके लिए खिंचावकी आवश्यकता पड़ती है । तात्पर्य यह कि विरुद्ध खिंचावसे शरीरमें समता आती है और समत्व प्राप्त करना ही योग है । चूंकि शीर्षासन में रुधिरका विरुद्ध खिंचाव होता है; अतः उससे बहुत बड़ा लाभ होता है । इसका अभ्यास १० वर्ष के बच्चे से लेकर वृद्धतकको करना चाहिये । सबको लाभ हो सकता है । खियाँ भी इसका अभ्यास करके लाभ उठा सकती हैं; केवल गर्भिणी लोको इसका अभ्यास नहीं करना चाहिये ।

किन्तु आसनों का अभ्यास करनेवालेको इस पुस्तक में बताये हुए नियमों के अनुसार ब्रह्मचर्यका पालन करना बहुत ही आवश्यक है । कारण यह कि सब साधनाओंकी जड़ ब्रह्मचर्य ही है । व्यभिचारी मनुष्यका किया कुछ भी नहीं हो सकता ।

सिद्धासन

इसमें बायें पैरकी एँडीको अराहके नीचे और दाहिने पैरकी एँडीको मूत्रेन्द्रियके ऊपर स्थापित करके बैठा जाता है । सिद्धा-

सनमें कमर और मेनदरड को विलकुल सीधा रखना चाहिये । मुँका रहना हानिकारक है । गर्दनका पिछला भाग भी मेनदरडके सीधमें ही रहना आवश्यक है । इस प्रकार शान्त चित्तसे प्रतिदिन बैठकर या तो प्राणायाम करना चाहिये और या चुपचाप बैठकर ईश्वरके स्वरूपका चिन्तन करना चाहिये । सिद्धासनसे बैठनेका अभ्यास भी पेटको शुद्ध करके ही करना उचित है । इस आसनका प्रभाव वीर्यपर सूख पढ़ता है । जो मनुष्य प्रति दिन घटे-दो-घटेका अभ्यास करता है उसकी काम-विकारसे रक्षा होती है । वीर्य भी स्थिर हो जाता है ।

यद्यपि मन बहुत ही चंचल है; इसका रोकना बड़ा ही कठिन काम है; किन्तु सिद्धासनसे मन बहुत जल्द स्थिर हो जाता है । इस आसनका अभ्यास भी धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये । एक साथ ही अधिक देरतक इस आसनसे रहना बड़ा हानिकारक है । इस आसनसे बैठकर यदि मनुष्य कुछ भी न करे, केवल शान्त रहनेका प्रयत्न किया करे, तब भी बहुत लाभ होता है । आजन्म ब्रह्मचारीको कम-से-कम तीन घण्टेका अभ्यास प्रतिदिन करना चाहिये । किन्तु जो लोग गृहस्थ ब्रह्मचारी हों उन्हें एक घण्टेसे अधिक अभ्यास नहीं करना चाहिये ।

सबसे पहले इस आसनसे केवल बैठनेका अभ्यास करना उचित है । शरीर के किसी भी अंगको न हिलाते हुए जितनी देरतक बैठनेका अभ्यास हो जाता है, उतना ही मन एकाग्र करनेके लिए अधिक सहायता मिलती है । एक घंटेके अभ्याससे थोड़ी देर तक

मनके व्यापारोंको रोका जासकता है और मनकी स्थिरतासे आत्म-शक्तिके विकासका आनन्द मिलने लग जाता है। यह अभ्यास मिलकुल एकान्त स्थानमें करना उचित है। शोर-गुल होनेसे मन की स्थिरता भङ्ग हो जाती है।

अभ्यासी मनुष्यको सात्त्विक भोजन तथा अन्य पद्धतोंपर पूरा ध्यान रखना चाहिये। भूख अधिक लगने पर गायका दूध पीना लाभदायक है। खियोंके लिए यह आसन करना उचित नहीं है।

॥ वक्तृत्व-कला ॥

ब्रह्मचारीको भाषण देनेका भी अभ्यास करना चाहिये। जिस प्रकार संसारमें अन्यान्य विद्याओंके अभ्यासकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार भाषण देना सीखनेकी भी आवश्यकता है। यह विद्या ब्रह्मचारियोंमें जरूर होनी चाहिये। कारण यह कि जितना प्रभाव जनतापर व्याख्यानोंका पड़ता है उतना और चीजका नहीं। किन्तु जितना असर एक ब्रह्मचारी व्याख्याताका पड़ सकता है, उतना असर दूसरे किसी भी व्याख्याताका नहीं। इसलिए ब्रह्मचारीको इस विद्यामें अवश्य निपुण होना चाहिये। कारण यह कि उसके द्वारा देश तथा जातिका अधिक कल्याण हो सकता है।

वक्तृत्व-कलामें इतनी बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि जो कुछ कहना हो, उसे थोड़े शब्दोंमें

सरल भाषा में कहे कि सुनने वालों की समझ में आ जाय। दूसरी बात यह कि ध्वनिमें माधुर्य गुण अवश्य रहे, ताकि लोगों के दिल में उन न पैदा हो। तीसरी बात यह है कि शब्द-योजना और भाव व्यक्त करने की युक्ति ऐसी रहे कि श्रोताओं पर उनका अच्छा प्रभाव पड़े, वे उससे शिक्षा प्राप्त हों कर सकें तथा उनके दिलों में व्याख्यान में कही हुई सारी वातें अच्छी तरह से बैठ जायें। चौथी बात यह है कि विषय का चुनाव अच्छा होना चाहिये और सुधार के या शिक्षा के जो मार्ग चतुर्भाये जायें, वे सरल और सुख-साध्य हों। चौथी बात यह है कि व्याख्याता जो कुछ करे, यानी जो कुछ दूसरों को उपदेश दे, उसके अनुकूल अपना भी आचरण रखें। क्योंकि यदि कोई व्याख्याता स्वयं तो गौजा-भाँग आदि मादक वस्तुओं का सेवन करता हो और दूसरों को अपने भाषण में इन वस्तुओं के त्यागने का उपदेश दे, तो उसके कथन का कुछ भी प्रभाव जनता पर नहीं पड़ सकता—यद्यपि लोग हँसी उड़ाते हैं। इसलिए व्याख्याता को पहले अपना आचरण ठीक करके पीछे उपदेश देना चाहिये—ताकि किसी को दिल्लगी उड़ाने का भौका न मिले। इसी से इस गुरुतर कार्यमें ब्रह्मचारी को ही प्रवृत्त भी होना चाहिये; क्योंकि उपदेशक होने का सद्गुरु अधिकारी ब्रह्मचारी ही है।

प्रेम

संसार में प्रेम बहुत ही अमूल्य वस्तु है। इसकी समता करने-वाली कोई भी चीज़ नहीं है। प्रेममें ऐसा जादू है कि यह संसार-

को अपने वशमें कर लेता है। वह हृदय धन्य है, जो प्रेमी हो—जिसमें संसारके प्रति प्रेम-भाव हो। प्रेम स्वर्गीय पदार्थ है और वहाँ ही रस-पूर्ण है। जिस हृदयमें प्रेम नहीं, वह हृदय, हृदय ही नहीं; प्रेम-शूल्य हृदयको पत्थर कहना चाहिये, दयाहीन कहना चाहिये। इसलिये ब्रह्मचारी को प्रेमी होना चाहिये।

जो ब्रह्मचारी संसारके प्रति प्रेमका भाव रखता है, सधपर दया-भाव रखता है; अपने मनको सदा शुद्ध प्रेम-मय रखता है, वह समय पाकर अमर हो जाता है। ब्रह्मचारीका हृदय प्रेम-पूर्ण इसलिए होना चाहिये कि उसको देशका सुधार करनेमें तत्पर होना पड़ता है। प्रेमी जीवकी धातोंका प्रभाव जितना अधिक पड़ता है, उतना दूसरेकी धातका नहीं। इसीसे कहा जा रहा है कि ब्रह्मचारी को प्रेमी होना चाहिये, ताकि उसको अपने काममें सफलता प्राप्त हो। क्योंकि यदि उसकी धात कोई प्रेमसे सुनेगा ही नहीं, तो अमल क्या करेगा? और प्रेमसे लोग तभी सुनेंगे और उसीकी धात सुनेंगे, जो सुननेवालोंको प्रेमकी दृष्टिसे देखेगा।

ब्रह्मचारीका संसारके प्रति प्रेम यही है कि वह "वसुधैव चुदुम्बकम्" के अनुसार समूचे संसारके लोगोंको अपना परिवार समझे। जिस प्रकार अपने घरके किसी आदमीसे यदि कोई अपराध हो जाता है, तो सहन करके उसे शिक्षा ही दी जाती है—शीघ्र उसका त्याग नहीं किया जाता, उसी प्रकार संसारका कोई भी आदमी यदि अपने साथ कोई अनुचित वर्ताव कर वैठे, तो ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह उसे उपदेश ही दे; यह नहीं कि घृणा करे

और क्रोधपूर्वक उसपर दौरात्म्य करनेके लिये आरुद् हो जाय। इस प्रकारकी ज्ञानाशीलतासे संसारके लोग कुछ ही दिनोंमें प्रेम करने लगते हैं और अपना हृदय भी समुन्नत हो जाता है। क्योंकि जो मनुष्य संसारके लोगोंको अपने प्राणीके समान समझता है तथा उनके दुःख-सुखमें शामिल होता है, उसे संसारके लोग भी अपने प्राणीके समान समझकर उसका कभी एक घाल भी थाँका नहीं होने देते। ऐसा विचार रखनेवालेपर ईश्वर भी छृणा रखते हैं।

‡ देश-सेवा ‡

ब्रह्मचारीके जीवनकी प्रधान वात होनी चाहिये, देश-सेवा। जो मनुष्य ब्रह्मचर्यका पूर्ण रीतिसे पालन करके शक्तिका संचय तो कर लेता, पर उस संचित शक्तिका उपयोग नहीं करता, उससे किसीकी भलाई नहीं करता, उसका सारा परिश्रम व्यर्थ है। जीवन वही धन्य है, जो दूसरेकी भलाई करनेमें व्यतीत हो; धन वही सार्थक है, जो दुखियोंके लिए खर्च हो; विद्या वही सफल है, जो औरोंको लाभ पहुँचावे; शक्ति वही उत्तम है जो सेवामें लगे। जिस प्रकार आमका दृक्ष बड़ा होकर लोगोंको सुस्वाद-पूर्ण फल देता है और यदि न दे, तो वन्ध्या कहलाता है, उसी प्रकार ब्रह्मचारी भी अपनी संचित शक्तिसे देशकी सेवा करता है और वह देश-सेवा न करे, तो वह निकम्मा है। वह शक्ति ही क्या, जो दूसरोंके काम न आवे।

संसारमें सेवा-धर्म सबसे बड़ा और उत्तम धर्म है। संसारमें

जितने महापुरुष हुए हैं, वे सब सेवा-धर्मके ही प्रतापसे हुए हैं। यिनी सेवा-धर्मके कोई भी मनुष्य वड़ा नहीं हो सकता, यह अटल यात है। इस धर्ममें उच्चता ही उच्चता है। जिसमें सेवा-भाव नहीं वह शक्ति-सम्पत्ति होते हुए भी कुछ नहीं है। जिस मनुष्यसे संसारका कोई लाभ न हो, उस मनुष्यका जीवित रहना, पृथिवीके लिए भार-स्वरूप है।

इसलिए ऐ ब्रह्मचारियो ! अपने हृदयमें सेवाका भाव भरो और हमेशा परमात्मासे इस धातकी प्रार्थना करो कि वह तुम्हें संसारका सशा सेवक बनावे। भला उस मनुष्यके धराघर संसारमें कौन हो सकता है, जिसकी काया-चाचा और मनसा दूसरोंके काममें लग जाय ? याद रखो कि संसारकी कोई भी चीज़ काम नहीं आनेकी। यहाँ तक कि यह अत्यन्त प्यारा शरीर जिसे तुम इतने यत्नसे पालते और रखते हो, वह भी यहीं-का-न्यहीं मिट्टीमें मिल जाता है—साथ नहीं देता ! ऐसी दशामें यदि यह नश्वर शरीर दूसरोंके उपकारमें या दूसरोंकी सेवा करनेमें लग जाय, तो इससे घढ़कर और क्या हो सकता है ?

† भारत-माता †
॥३३-३३-३३-३३॥

जिसने तुम्हें पाल-पोसकर इतना वड़ा किया, जिसके वक्षःस्थल-पर तुम खेल-कूदकर, लोट-पोटकर तथा आमोद-प्रमोद करके इतने बड़े हुए हो और रहते हो, जिसके उदरसे निकली हुई चीजें खाकर तुम जीते हो, जो जन्मसे लेकर मृत्यु-पर्यन्त तुम्हारा

समान भावसे पालन करती है तथा जिसके बलपर तुम अपने सारे बल-पौरुषोंको काममें ला सकते हो—वही भारत-माता है। जन्म देनेवाली माँ सद्वकी भिन्न-भिन्न है, पर भारत-माता भारतमें रहनेवाले सब लोगोंकी एक ही है। अहा ! इस भारत-माताके समान पालन करनेकी शक्ति किसीमें भी नहीं। यह छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, ऊँच-नीच, कोट-पतंग, पशु-पक्षी, जलचर-थलचर सबपर सम दृष्टि रखती है। इस माताके प्रति प्रत्येक मनुष्य का कुछ-न-कुछ कर्तव्य है। कहा है:—

“जननी जन्म-भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी”

अतएव प्यारे वन्धुओ ! ऐसी उपकारिणी माताकी और कुछ भी तो ध्यान दो। उसके अनाथ और अवोध बच्चे जो कि तुम्हारे भाई हैं, तड़प रहे हैं। भारत-माता उनके दुःखसे व्याकुल हो रही है। तुम्हीं सोचो, यदि तुम्हारे अज्ञान बच्चेपर किसी तरहकी मुसीबत आवे, तो तुम्हें कितनी पीड़ा होगी ? यह जानते हुए भी कि माँ व्याकुल होकर विलख रही है, तुम चुप क्यों बैठे हो ? क्या तुम अपने भाइयोंके कष्टको दूर करके अब भी माताको प्रसन्न नहीं करना चाहते ? यदि नहीं, तो तुम कृतनी हो, संसारमें तुम्हारे जीनेकी कोई जल्दत नहीं। निकल जाओ इस संसारसे। जब तुम हमारा काम नहीं करते, तो हमसे तुम्हें काम लेने का क्या अधिकार है ? यदि तुम माँके दुःख दूर करनेके लिए तैयार नहीं हो, तो उससे अपनी सेवा क्यों कराते हो ? क्यों उसके उद्दरसे निकली हुई नाना प्रकारकी चीजें, जैसे—अन्न-फल आदि खाते हो ?

क्यों उसपर बोझकी भाँति अपने शरीरको लादे हुए हो ? उसके वज्रों जैसे—गाय, भैंस आदिसे क्यों अपनी परवरिश करते हो ?

‘तुम उसके प्रति कुछ भी नहीं कर रहे हो, फिर भी वह तुम्हारा पालन अपने सुपूर्तोंके अनुसार ही करती है। किन्तु यह उसकी महानता है। क्या उसकी इस महानतासे तुम अनुचित लाभ उठाना चाहते हो ? यदि हाँ, तो यह तुम्हारी भूल है। माँकी नेकियोंका बदला चुकाये विना तुम कभी भी सुखी नहीं रह सकते, यह निश्चय है।

अतएव ब्रह्मचारियोंको भारत-माताके दुःखोंकी ओर ध्यान देकर अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये। क्योंकि ब्रह्मचारी ही भारत-माताके कर्मवीर पुत्र हैं। लायक पुत्रसे ही माँ सेवा पानेकी विशेष आशा रखती है। यदि योग्य और शक्ति सम्पन्न पुत्र होकर नालायक निकल जाता है, तो माताको अत्यधिक दुःख होता है। और फिर ऐसे लायक पुत्रको लायकी हासिल करनेसे लाभ ? जो पुत्र विद्वान् और वलवान् होते हुए भी माताकी सेवा नहीं करता, उसे नराधमके सिवा और क्या कहा जा सकता है ?

भारत-माताकी सेवा करनेके लिए तथा उसे सुख पहुँचानेके लिये मनुष्यको सदाचारी और सत्यवक्ता अवश्य होना चाहिये, जो मनुष्य मातृ-भक्त होते हुए सदाचारी और सत्यवक्ता नहीं होता। वह माताका स्नेह-भाजन कदापि नहीं हो सकता। जिस लड़के की लोकमें निन्दा होती है, उससे माता क्या कभी प्रसन्न रह सकती है ? जो मनुष्य सदाचारी नहीं होता, सदा झूँड बोलता है, उसीकी

लोकमें निन्दा होती है। इसलिए माताके भक्तोंको सदाचारी और सत्यवादी भी होना चाहिये।

ਲ੍ਰੀ-ਪੁਰਖ-ਜੀਵਨ

इस विषयमें पहले बहुत कुछ लिखा जा चुका है; किन्तु यहाँ कुछ और लिखना आवश्यक है जो कि ब्रह्मचारीके लिये बहुत ही जरूरी है। धैंगलाकी 'नारी-रहस्य' नामकी पुस्तकमें लिखा है— “खी-पुरुष-जीवन समाजकी एक मूल ग्रन्थ है। खी और पुरुषका दास्पत्य-सम्बन्ध जितना मजबूत रहेगा, सामाजिक जीवनकी शृङ्खला भी उतनी ही सुदृढ़ रहेगी। इस सम्बन्धको सुदृढ़ बनानेके लिये समाज ने दो उपाय निश्चित किये हैं; एक तो खी और पुरुष-के शारीरिक सम्बन्धमें हर तरहकी सुविधा देना और दूसरे दोनों-को एक ही धर्म, कर्म, ब्रत तथा आदर्शमें धौंध देना। इन दोनों चारोंका जहाँ एकीकरण होता है, उसीको विवाह-सम्बन्ध कहते हैं।

यह प्रश्न किया जाता है कि समाज-वन्धनके लिये दान्पत्य-सम्बन्धकी क्या आवश्यकता है ? किस अवस्थामें पहले-पहल दान्पतिकी उत्पत्ति हुई ? इसका प्रधान लक्ष्य है सन्तानोत्पत्ति-उसका पालन तथा भरण-पोषण । ग्रारन्मिक अवस्थामें प्रत्येक पुरुषको अपनी रक्षाका भार अपने हां ऊपर रखना पड़ता था । बाद गृह-निर्माण आवश्यक समझा गया । खी अपने बच्चेको गोदमें लेकर बैठती थी और पुरुष उसकी रक्षा करता था । इस प्रकार समाजकी उत्पत्ति हुई ।

अंब इस समाजको उचित रीतिसे चलाने तथा उसकी उन्नति करनेके लिये ब्रह्मचारीको क्या करना चाहिये, यह स्वाभाविक ही समझा जा सकता है। सबसे बड़ी आवश्यकता इस बातकी है कि समाजके जितने मनुष्य हैं, सब संयमी बनें। बिना संयम के समाजकी उन्नति नहीं हो सकती। वह मनुष्य भी व्यभिचारी ही है, जो दास्त्य-जीवनके नियमोंका यथार्थ रीतिसे पालन न कर- के रात-दिन विषयमें रत रहता है। गृहस्थीमें रहनेवाले लोगोंको चाहिए कि वे खो-पुरुप एक चारपाई पर प्रति दिन न सोया करें। क्योंकि एक जगह सोनेसे ब्रह्मचर्यका पालन नहीं हो सकता। चाहे वे सम्मोग न भी करें, तब भी ब्रह्मचर्यका नाश हो जाता है। कारण यह कि एक जगहके सोनेसे स्वाभाविक ही मनमें विकार उत्पन्न हो जाता है और मनमें जरा भी विकार उत्पन्न होनेसे वीर्य अपना स्थान छोड़ देता है। बाद वह स्थान-च्युत वीर्य किसी-न-किसी रूपमें बाहर निकल जाता है, जिसका निकलना कभी मालूम होता है और कभी तो बिलकुल मालूम ही नहीं होता।

५३ नम्रता ५४

बड़ोंकी शोभा नम्रता है। जिस मनुष्यमें नम्रता रहती है, उसकी सब लोग पूजा करते हैं। यह एक ऐसी जड़ी है कि इसके सामने बड़े-बड़े क्रूर और खल-स्वभाववालोंको भी नीचा देखना पड़ता है। इसीसे किसी कवि ने कहा भी है:—

“क्षमा खड़ लीन्हें रहै, खल को कहा बसाह”

यद्यपि ज्ञाना और नम्रता दोनों विभिन्न वस्तुएँ हैं, तथापि जो मनुष्य नम्र होता है, उसमें ज्ञानार्थीता अपने आप आजाती है और ज्ञानावान् मनुष्य स्वाभाविक ही नम्र भी हो जाता है। इसलिये इस प्रसंगमें ज्ञानका उदाहरण देना अप्रासंगिक या अनुचित नहीं कहा जा सकता। क्योंकि दोनोंका परस्परमें अंगागि सम्बन्ध है।

कहावत है कि, “नंगा ईश्वरसे भी बड़ा” अर्थात् खलोंको खलतासे ईश्वर भी तरह दे जाता है। इससे यही सिद्ध होता है कि परमात्माके पास भी खलोंको परास्त करनेके लिये एक ही अस्त्र है; यानी—नम्रता या ज्ञानाशीलता। इसलिए मनुष्यको इस अनुपम रत्न नम्रताकी शरण अवश्य लेनी चाहिये। नम्र मनुष्य अपनी सारी इच्छाओंको बहुत जल्द पूरी कर लेता है। जिस कामको कोई मनुष्य नहीं कर सकता उसे नम्र मनुष्य आनन्दानन्दानन कर लेता है। उदाहरणार्थ किसी कृपण मनुष्यसे कोई भी मनुष्य दमड़ी भरकी चीज़ नहीं ले सकता; पर नम्र मनुष्य उससे भी बड़ी-बड़ी चीज़ोंको जरासेमें ले लेता है। जो काम द्वावसे भी नहीं हो सकता, वह नम्रतासे हो जाता है। अतः ब्रह्मचारीको यह गुण अपनेमें भरना चाहिये।

+ फुटकल बातें +

अब इस प्रकरणमें, ब्रह्मचारियोंके लिए कुछ खास बातों का उल्लेख किया जायगा।

१—ब्रह्मचारीको साक्षकिल अथवा घोड़ेकी सवारी भूलकर भी न करनी चाहिये। क्योंकि इससे अण्डकोष और गुदाके वीचकी नस दबती और घर्षित होती है। इस नसके दबनेका परिणाम यह होता है कि वीर्य नष्ट हो जाता है।

२—गदेदार या अधिक मुलायम तथा गर्म विस्तरे पर कभी न सोवे। इससे भी वीर्यके स्खलित हो जानेकी सम्भावना रहती है।

३—अधिक रात तक न जागे और न अधिक भोजन ही करे। ये दोनों ही बातें हानिकारक हैं।

४—यदि स्वप्रदोष होता हो, तो सोते समय मस्तकके पिछले भाग और गर्दनको ठंडे पानीसे खूब तर करना चाहिये तथा गुदाके पासकी नस पर अच्छी तरहसे पानीके छीटे लगाकर उसे तर कर देना उचित है। ऐसा प्रतिदिन करनेसे स्वप्रदोषादिक विकार दूर हो जाते हैं।

५—अपने मनको सदा उज्ज्वलियों और भावोंसे भरे रहना चाहिये। ओछे विचारोंसे मन भी तुच्छ हो जाता है।

अस्तु। ब्रह्मचारियोंके लाभकी प्रायः सभी वातें इस पुस्तक में लिखी जा चुकीं। इब अन्तमें अपने देशके नवयुवकों से इतना ही कहना है कि, ऐ भारतीय नवजवानों! यह प्रभातका समय है, नींद और आलस्य को छोड़कर साहसके साथ इस पुस्तकमें बतलायी हुई वातों पर चलकर ब्रह्मचारी ज्ञानो और ब्रह्मचर्य द्वारा शक्ति पैदा करके देश तथा जातिका उद्धार करो। बस यही मनुष्यका का धर्म है और इसीमें मानव-जीवनकी सार्थकता भी है।

ब्रह्मचर्य की भलाक

प्रार्थना

ॐ सहनाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्त्रिवना-
वधीमस्तु मा विद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्मार्जमृतं
गमय ॥

योऽन्तः प्रविदय मम वाचमिमां प्रसुताम्

संजीवयत्यस्तिलशक्तिधरः स्वधाम्ना

अन्याश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्

प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्

या कुन्देन्दुतुपारहारधवला, या शुभ्रवद्वावृता

या वीणावरदण्डमंडितकरा, या श्वेतपद्मासना

या भृष्णुतशंकरप्रभृतिमिदैवैः सदा वन्दिता

ता मां पातु सरस्वती भगवती, निःशेषजाह्यापहा

यं व्रक्षा वस्त्रेन्द्रसद्भरतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै

वेदैः सांगपदकमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः

ध्यानावस्थिततद्रत्ने भनसा पश्यन्ति यं योगिनः

यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः

चर्पटपंजरी का स्तोत्र भागः

दिननपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः

कालः कीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुच्छत्याशावायुः ।

भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते
 प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति 'हृकृक् करणे' ध्रुव०
 जटिले मुण्डी लुम्बितकेशः कापायांवरवहुकृतवेषः
 पश्चज्ञपि च न पश्यति मूढः उदरनिमित्तं वहुकृतवेषः २
 अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविदीनं जातं तुण्डम्
 हृद्दो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ३
 पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्
 हह संसारे भवदुस्तरे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे ४
 पुनरपि रजनी पुनरपि दिवसः पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः
 पुनरप्ययनं पुनरपि वर्षं तदपि न मुञ्चत्याशामपंभ् ५
 गेयं गीतानामसद्गम्यं ध्येयं श्रीपतिल्पसज्जनम्
 नेयं सज्जनसंगे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम् ६

भजन

काहे रे बन खोजन जाई ।
 सर्वनिवासी सदा अलेपा, तोही संग समाई ॥
 पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है, मुकुर माहिं जस छाई ।
 तैसे ही हरि बसै निरंतर, घट ही खोजो भाई ॥
 बाहर भीतर एकै जानौ, यह गुरु ज्ञान बताई ।
 जन 'नानक' बिन आपा चौन्हें, सिटै न अमं की काई ॥

मन रे ! परस हरि के चरन ।
 सुभग, सीतल कमल-कौमल, त्रिविध-जवाला-हरन ॥
 जे धरन प्रहाद परसे, इन्द्र पदवी धरन ॥

जिन चरन ध्रुव अठल कीन्हों, राखि अपने सरन ॥
 जिन चरन ब्रह्मांड भेँव्यो, नखसिखौ श्रीमरन ॥
 जिन चरन प्रसु परसि लीन्हें, तरी गौतम-धरन ॥
 जिन चरन कालीहि नाथ्यो, गोपलीला करन ॥
 जिन चरन धारयो गोवर्धन, गरब मधवा हरन ॥
 दास 'मीरा' लाल गिरिधर, अगम तारन तरन ॥

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड पराई जाणे रे
 परदुःखै उपकार करे तोये—मन अभिमान न आणे रे
 सकल लोकमां सहुने वंदे—निदा न करे केनी रे
 चाच काछ मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेनी रे
 समद्धी ने तृष्णात्यागी, परस्ती जेने मात रे
 जिब्हा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे
 मोहमाया व्यापे नहिं जेने, हृषि वैराग्य जेना मनमाँ रे
 रामनाम—शुंताली लागी सकल तीरथ तेना तनमाँ रे
 वण्लोभी ने कपटरहित छे, काम क्रोध निवार्या रे
 मणे नरसैयो तेनुं दरशन करतां, लुल एकोतेर तार्या रे

तुम ब्रह्मचर्य-ब्रत पालो ।

ऐ भारत-माँ के लालो ॥ ॥

बडे-बडे योधा होते हैं, इसे पाल करके भाई !
 शानी-दुष्टिमान हैं होते, सभी जनों को सुखदायी ॥

करो पूर्ण विश्वास आज से,
 झूठ न कह कर ढालो । तुम०

भोप्य पितामह ने इस बल से, भीषण समर मचाया था ।
 परशुराम ने धार इसी को, रिषि का मान लचाया था ॥

महावीर हनुमान आदि के,
 चरित भले पढ़ ढालो । तुम०

स्वामी शंकर दयानन्द ने, धर्म-ध्यजा फहराई थी ।
 पाखण्डों का खण्डन करके, वैदिकता विकसाई थी ॥

दोनों बाल ब्रह्मचारी थे
 ऐ मंगल मति वालो । तुम०

ऋषि-मुनियों के परम तेज से, दुष्ट दैत्य घवराते थे ।
 आत्मिक शक्ति घोर तप करके, इसे साध कर पाते थे ॥

इसी वस्तु से सब कुछ मिलता
 जग में देखो-भालो । तुम०

नारी-नर इस अमृत-पान से, देह अमर कर सकते हैं ।
 देश-जाति-कुल में पूजित हो, दुःख-दैत्य हर सकते हैं ॥

छोटे बच्चे नवयुवकों को,
 इस साँचे में ढालो । तुम०

रोग-नहित हो सौ वर्षों तक, जो कोई जीना चाहे ।
 रक्षा करे वीर्य की अपने, संयम मन में निरवाहे ॥

'कविपुष्कर' कुछ काल नियम से,
 इसे बन्धु अजमा लो ! तुम०

पालन कर ब्रह्मचर्य जग में यशा पाइये !
 वीर्य-नाश करके मत नरक-मध्य जाइये ॥
 आत्म-दमन मूल-संत्र वैदिक मत है यही—
 मन-वच-क्रम छोड़ छग्ग इसको अपनाइये ।
 कर्मवीर-जीतिमान बना जो चाहते—
 सत्तम गुण मान इसे जीवन में लाइये ।
 सत्य-धर्म को विचार चब्बल चित हो नहीं—
 'पुष्करकवि' देश और जाति-काम आइये ॥

ब्रह्मचर्य का महत्व

(पुरुषोत्तम परशुराम)

चूका कहीं न, हाथ गले, काटता रहा ।
 पैना कुठार, रक्त बसा, चाटता रहा ॥
 भागे भगोड़-भीरु भिड़ा, धीर न कोई ।
 मारे महीप, वृन्द चचा, वीर न कोई ।
 सुप्रसिद्ध राम,-जामदग्न्य, काँकुदान है ।
 महिमा-अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥

(महावीर-हनुमान)

सुग्रीव का, सुमित्र बड़े, काम का रहा ।
 प्यारा अनन्य, भक्त सदा, राम का रहा ।
 लङ्घा जलाय, काल खलों, को सुफा दिया ।
 मारे प्रचण्ड, दुष्ट दिया, भी बुझा दिया ॥
 हनुमान बली, वीरवरों में प्रधान है ।
 महिमा-अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥२॥

(राजर्षि-भीष्मपितामह)

मूला न किसी, भईंति कहड़ी, टेक ठिकाना ।
 माना मनोज, का न कहौं, ढीक ठिकाना ॥
 जीते असंख्य, शमु रहा, दर्प दिखाता ।
 शश्या शरों की, पाय मरा, धर्म सिखाता ॥
 अब एक भी न, भीष्म बली, सा सुजान है ।
 महिमा-भखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥३॥

(महात्मा शंकराचार्य)

संसार सार, हीन सड़ा, सा उड़ा दिया ।
 अहंकृ जीव, मन्द दशा, से छुड़ा दिया ॥
 थह्रैत एक प्रग्न शरों, को बता दिया ।
 कैवल्य-रूप, सिद्धि सुधा, का पता दिया ॥
 अम-भेद भरा, शंकरेश का न ज्ञान है ।
 महिमा-भखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥ ४ ॥

(महर्षि दयानन्द सरस्वती)

विज्ञान पाठ वेद-पढ़ों का पढ़ा गया ।
 विद्या विलास, विज्ञ वरों का बढ़ा गया ॥
 सारे असार, पन्थ मतों, को हिला गया ।
 भानन्द-सुधा, सार दया, का पिला गया ॥
 अब कौन दयानन्द, यतीके समान है ।
 महिमा भखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥ ५ ॥

नाथुरामशंकरशर्मा 'शंकर'

धर्मशक्ति

ब्रोड़ो न तुम धर्म को, चाहे जान तन से निकले ।
हो बात सत्य लेकिन, मीठे बचत से निकले ॥ १ ॥
अग्नि का धर्म जवतक, रहता है उसमें कायम ।
हाथी की क्या है शक्ति, जो पास से भी निकले ॥ २ ॥
फिर अपना धर्म तजकर, जब राख वह हो जावे ।
चींटी निधंडक होकर, ऊपर से उसके तिकंजे ॥ ३ ॥
है धर्म की यह महिमा, यदि इसको धार लो तुम ।
शेरो ववर की मानिन्द, शक्ती बदन से निकले ॥ ४ ॥
ढरकर चलेगा बुही, हृषा गुनाहों में जो ।
थे ईश के जो प्यारे, वे तो सूर्य बन के निकले ॥ ५ ॥
यह बात सत्य जानो, मेरे कहे को मानो ।
जो कुछ हृदय से निकले, सच्ची लंगन से निकले ॥ ६ ॥
धन से धर्म को कर लो, नहीं तो यह होगा आस्तिर ।
सिकन्दर के हाथ दोनों, खाली कङ्कन से निकले ॥ ७ ॥

दो दो बातें

क्या मौत से बच सकते हो ? नहीं । तो फिर किसी से भय क्यों करते हो ? ईश्वर पर विश्वास रख निर्भय होकर अपने अधिकारों की रक्षा करना सीखो । स्मरण रखो, तुम अमृत पुत्र हो, ईश्वर हर समय तुम्हारे साथ है ।

—स्वामी सत्यदेव परिवारक

* सत्यं शिवं सुन्दरम् *

❀ इति: ❀

CATALOGUE FOR HINDI BOOKS.

Books to be had from :—

Nashi Pustak Dhandar
S.B.SINGH & CO.
Benars city

हिन्दी पुस्तकों का सूचीपत्र

यादि

इस सूचीपत्र में वे पुस्तकें जो आप चाहते हैं न हों तो आप वे खटके हमें पत्र लिखिये, इनके अतिरिक्त और भी सब जगहों की हजारों पुस्तकें हमारे पास मौजूद हैं और बराबर नई-नई पुस्तकें आती रहती हैं। किसी विषय की कोई भी पुस्तक हो, अगर वह भारतवर्ष भर में कहीं भी मिल सकती है तो हमारे यहाँ जरूर मिलेगी यह ध्यान रखिये। किसी भी पुस्तक के लिये मुझे लिखिए।

सब तरह की हिन्दी पुस्तकों के मिलने का पक्का मान्य पता —

एस० बी० सिंह एण्ड कॉ०

काशी-पुस्तक-भण्डार,

पनारस सिटी।

२ सब तरह की हिन्दी पुस्तकों के मिलने का पता—

काशी-पुस्तक-भण्डार और एस० बी० सिंह प्रणट कॉ० के स्थायी ग्राहकों के लिये नियम और सूचनायें ।

१. आठ आना प्रवेश, शुल्क देकर प्रत्येक सज्जन हस कार्यालय के स्थायी ग्राहक हो सकते हैं। यदि कभी कोई सज्जन कार्यालय के स्थायी ग्राहक न रहना चाहेंगे तो प्रवेश शुल्क आठ आना रहेंगे उस समय लौटा दिया जायगा ।

२. इस कार्यालय के स्थायी ग्राहकों को कार्यालय द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पैने मूल्य में मिला करेंगी ।

३. स्थायी ग्राहकों को एक वर्ष में कम से कम ५) रुपये की पुस्तकों मैंगाने के लिये सूचना दी जायगी वे पुस्तकें हमारे हस कार्यालय द्वारा प्रकाशित रहेंगी या अन्य प्रकाशक द्वारा प्रकाशित रहेंगी । पर ग्राहकों को पाँच रुपये के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों लेने न लेने का अधिकार होगा ।

४. स्थायी ग्राहकों को अधिकार होगा, कि हमारे यहाँ से प्रकाशित पुस्तकों की चाहे जितनी प्रतियाँ, चाहें जितनी बार, पाँनी कीमत में मैंगा सकते हैं ।

५. स्थायी ग्राहकों को हिन्दुस्तान भर की पुस्तकें सुभीते से —) आना या =) आणा की रुपया कमीशन पर मिलेंगी ।

६. पता-ठिकाना वर्गीकरण साफ़ साफ़ जहाँ तक होसके मातृ-भाषा हिन्दी में लिखना चाहिये ।

७. डाकघर में पारसल सात दिन से अधिक दिपाजिट नहीं रहता हसलिये जल्द छुड़ा लेना चाहिये ।

८. बढ़े आड़ं देते समय यदि हो सके तो चौथाई या कुछ रुपया पेशगी और परे पते के साथ रेलवे स्टेशन का नाम भेजना चाहिये ।

९. यदि पारसल के हिसाब में भूल हो तो पारसल छुड़ाने के बाद भी बीजक नम्बर लिखकर वसूल कर सकते हैं । पर सूचना माल छुड़ाने के दिन ही देनी चाहिये ।

१०. लाइब्रेरी (वाचनालय) तथा पुस्तक विक्रेताओं को उचित कमीशन दिया जाता है । पन्न व्यवहार करें ।

११. पुस्तकों का मूल्य प्रायः बट्टा-बढ़ता भी रहता है । सूचीपत्र में भी कहीं भ्रमवश अशुद्ध छप जाने की संभावना रहती है । किन्तु लिया वही जाता है जो उचित मूल्य होता है । इसका पक्का विश्वास कीजिये ।

प्रवेशपत्र

महाशय, मैंने आपके कार्यालय के नियम और सूचनाएँ पढ़ ली हैं। हृषया उमारा नाम स्थायी ग्राहकों की श्रेणी में लिखकर कृतार्थ करें। प्रवेश शुल्क के लिए इमने ॥) आठ आने का एकट सेवा में भेजा है। या तो चे लिपिन पुस्तक पाने मूल्य में V. P. से भेजकर उसमें यह भी आठ आना जाँड़ले।

भवदीय—

ह०.....

पूरा पता.....

मु०.....घो०.....

संख्या	पुस्तक का नाम	तादाद	मूल्य
१	ग्रन्थालय की महिसा		१)
२	नार्म-धर्म-शिक्षा		१)
३	धर्म ग्रंथ जातीयता		१)
४	अरविन्द मन्दिर में		III)
५	वन-देवी		III)
६	देश की वात		१II)
७	मिलन-मन्दिर		२।)
८	श्रीमद्भगवद्गीता—ठीकाकार महात्मा गाँधी		१)
९	कर्तव्याधात		२।)
१०	विधवा की आत्म-कथा		२)
११	लाहौर काँग्रेस का इतिहास		II)

जोड़

नोट—जो उपरोक्त पुस्तके छपी हैं वे हमारी प्रकाशित हैं। उनमें
जो न संगानी हाँ उनको काट दें। और यह पेज फाढ़कर J.I. के टिकट से
कुरुपोस्ट मेज दें।

मैनेजर

हमारी भारत विख्यात स्वतः प्रकाशित पुस्तकें

लारी-धर्म-शिक्षा—लेखिका—श्रीमती मनव्रता देवी। अब तक जितनी पुस्तकें इस विषय की निकली हैं उन सब से यह बढ़ी चढ़ी है। एक हिन्दू लारी के लिए जिन बांतों का ज्ञान होना जितान्त भावशयक है, उनका दिग्दर्शन इस पुस्तक में बड़े ही रोचक ढंग से सरल भाषा से दराया गया है। सुन्दर शिक्षा प्रट कहानियों द्वारा गहन विषयों के प्रतिपादन और अनुभव की हुई घरेलू चिकित्सा पाकशास्त्र, चिट्ठी पत्री, तथा पारा पद्मोस के साथ वर्ताव, विधवा कर्तव्य, संगीत, सूर्य का काम, जी पुरुष-जीवन आदि के पूर्ण विवेचन ने इस पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ा दी है। ग्रहस्थी में स्वर्गीय सुख का आनन्द लेना चाहते हों तो इसे अपने घर की छलनाभों को भवश्य पढ़ाइए। परिणाम देखकर आप स्वयं चकित हो जायेंगे मूल्य १।) दूसरी बार छपी है।

वन-देवी—वन-देवी हमारे साहित्यकाश का एक चमका हुआ नक्षत्र है, हमारे समाजोदार न का सद्यः प्रस्फुटित सौरभमय प्रसून है, हमारे राष्ट्रीय श्रोता की छोटी परन्तु सुदृढ़तारिणी है। देश की पराधी-नेता का दुख अनुभव करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह पुस्तक भवश्य पढ़नी चाहिए। चौथी बार छप रही है। ५ चित्रों सहित पुस्तक का मूल्य ॥।)

ब्रह्मचर्य की महिमा—हमारे दैविक और मानसिक पतन का मूल कारण ब्रह्मचर्य की उपेक्षा है। इस विषय की जितनी पुस्तकें हिन्दी में निकलनी चाहिए उनकी अभी तक नहीं निकली हैं। ग्रस्तुत पुस्तक में भारतीय नर नारियों की संघर्षमय आधुनिक परिस्थिति पर पूर्ण दृष्टि रखते हुए ब्रह्मचर्य पालन की विधि और महिमा बड़े ही आकर्षक यत्नों द्वारा बतलाई गई है। आवाल-वृद्ध-युवा सबको इस पुस्तक का मनन करना चाहिये।

दूसरी बार छप के तयार है मू० १)

योगिराज अरविन्द को कौन नहीं जानता ?
यह दोनों पुस्तकें उन्हीं के करकमलों द्वारा लिखित ।

'धर्म और जातीयता'

धर्म, जाति और राजनीति पर बड़े ही भव्य विचार ग्रन्थ किए गए हैं। दार्शनिक जगत में इस पुस्तक का विशेष भावर हुआ है।

तीसरा संस्करण हो रहा है मू० १)

अरविन्द मन्दिर में

(लेखक—योगिराज म० अरविन्द धोप)

इस पुस्तक में योगिराज ने हर तरह से साधकों के लिये साधन की विधि बतलायी है, भारत के साथ ही समूचे संसार का भविष्य बतलाया है, अपनी अवधार का दिग्दर्शन कराया है, योगिक बल से ईश्वरीय प्रेरणा का भनुभव करके देश के कल्याण के लिए योगियों की आवश्यकत दिलायी है, राजनीतिक कार्यकर्ताओं की त्रुटियाँ दिलायी हैं, राजनीति में भारत के प्रति ईश्वर का संदेश सुनाया है। योगिराज की यह मौलिक चिना है, मूल्य सिर्फ ॥।)

विधवा की आत्मकथा

लेखिका—श्रीमती प्रियम्बदा देवी ।

इस पुस्तक में हिन्दू-समाज की एक बाल-विधवा ने अपने उपर होने वाले समाज के अन्याय व अत्याचारों से दुःखी हो वेश्यावृत्ति का आश्रय ग्रहण कर अपने जीवन की वीती सारी घटनाओं को बढ़ी ही सुन्दर रोचक भाषा में लिखा है। समाज के बड़े-बड़े सरपंच तथा धार्मिक आठंवर वालों के द्राचार और उनकी पापपूर्ण लीला का भी लेखिका महाशया ने बड़ी खूबी के साथ वर्णन किया है। पुस्तक उपयोगी है तथा हिन्दू-समाज में विधवाओं की दुर्दशा का जीता-जागता चित्र है। मूल्य पौने तीन सौ पृष्ठ की सजिल्द पुस्तक का २) रूपया ढाक खर्च अलग।

६ सब तरह की हिम्मदी पुस्तकों के मिलने का पता—.

हमारी प्रकाशित पुस्तकों पर भारत के कुछ प्रसिद्ध समाचार पत्रों की सम्मतियाँ अवश्य पढ़ें

नारी धर्म शिक्षा—लेखिका श्रीमती मनद्रता देवी। प्रकाशक श्री
एस० वी० सिंह पृष्ठ को० बनारस सिटी। पृष्ठ-संख्या १५६, मूल्य ३।)

पुस्तक का विषय नाम से ही रूप है। इस में वाल-शिक्षा, गृह-
कार्य, दिन-चर्या, घर वालों के साथ वर्ताव, सन्तान-पालन, रोग-चिकित्सा,
भोजन-निर्माण-विधि आदि विषयों पर संक्षेप में उ अध्यायों में विचार
किया गया है। पुस्तक स्थियों के काम की है और साधारण पढ़ी-लिखी
स्थियों को इससे बहुत कुछ-जानकारी हो सकती है। साप्ताहिक 'प्रताप'

धर्म और जातीयता; मूल लेखक श्री अरविन्द। अनुवादक—श्री
देव नारायण द्विवेदी। प्रकाशक वही उपरोक्त। पृष्ठ-संख्या ५२८। मूल्य ।।

पुस्तक में धर्म और जातीयता की विशद विवेचना की गई है। धर्म
के प्रकरण में धर्म-अधर्म और कर्म-अकर्म का तथा जातीयता के खण्ड में
जाति और वर्ण में क्या अन्तर है, आदि उल्लेख हुई गुरुथियों को सुलझाने
का प्रयत्न किया गया है। अरविन्द वायू की इस पुस्तक की बहुत प्रशंसा
हुई है और वह कई एक देशी-विदेशी भाषाओं में अनुवादित हो चुकी है।
योगिराज के विचारों से सहानुभूति रखने वालों को यह पुस्तक अवश्य
देखना चाहिए। 'प्रताप' २१ जुलाई १९२९

—प्रकाशनारायण शिरोमणि वी० ए०

ब्रह्मचर्य की महिमा;—लेखक-श्री सूर्यधली सिंह, प्रकाशक-एस०
वी० सिंह ऐण्ड को० बनारस सिटी, पृष्ठ १५४, मू० ।)

'ब्रह्मचर्य की महिमा' में 'ब्रह्मचर्य की महिमा, ब्रह्मचर्य से लाभ,
विभिन्न प्रकार के मैथुन, स्कूलों और कालेजों में दुराचार, ब्रह्मचर्य-पालन
की विधियाँ, आहार, शिक्षा, माता-पिता के कर्तव्य आदि वार्तों पर प्रकाश
डाला गया है। अब तक इस विषय की कई पुस्तकें निकल चुकी हैं।
फिर भी ऐसे महत्वपूर्ण विषय पर अनुभव और योग्यता के साथ जितना
अधिक प्रकाश डाला जाय, उत्तम है। इस पुस्तक में उपरोक्त विषयों पर

अच्छी तरह प्रकाश ढालने की चेष्टा की गई है। पुस्तक नवयुवकों के पढ़ने लायक है।

—‘प्रताप’

४. स्त्रियोपयोगी

नारी-धर्म-शिक्षा—लेखिका, श्रीमती मनवता देवी,
प्रकाशक, एस० वी० सिंह एण्ड को०, बनारस सिटी मुल्य १।
पृष्ठ-संख्या १६। कागज़ बढ़ियाँ, छपाई अच्छी।

नारी-धर्म-शिक्षा: संघर्षी आजकल बहुत किताबें निकलती रहती हैं; लेकिन अधिकांश पुस्तकों की लिखाँ होती हैं और पुस्तक स्वभावतः स्त्रियों के साथ कुछ अन्याय कर देते हैं। इस पुस्तक की लेखिका पुराने आदर्शों की माननेवालों एक महिला है। हमें यह देखकर दुश्मी हुई है कि महिलाएँ भी अपनी बहनों की शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दे रही हैं। संभव है, नई रोशनीवाली बहनों को पुरुष-सेवा और परिवारिक सेवा का आदर्श दिक्षिणाञ्ची मालूम हो; लेकिन जो देवियाँ अपनी कन्याओं को फ़ेशनेशल लेडी नहीं, सहधर्मिणी बनाना चाहती हैं; उन्हें इस किताब से बढ़ी सहायता मिलेगी। स्त्रियों के लिये जिन बातों के जानने की ज़रूरत होती है, वे सब यहाँ सरल और शिष्ट भाषा में मिलेंगी। नीति, स्वास्थ्य, संतति-पालन, हिसाब-किताब, चिट्ठी-पत्री, गृह-शिल्प, सभी बातों का उल्लेख किया गया है और इस दंग से कि थोड़े में सभी बातें भा गई हैं—शब्दों का माया-जाल नहीं है। महिला-शालाभों की ऊँची कक्षाओं में यह पुस्तक रख दी जाय, तो वालिकाओं को विशेष लाभ होने की आशा है।

(मायुरी)—प्रेमचन्द्र

नारी-धर्म-शिक्षा—श्रीमती मनवता देवी ने इस पुस्तक में स्त्रियों के जानने के योग्य प्रायः सभी बातों का समावेश करने का प्रयत्न किया है। पुस्तक सात अध्यायों में विभक्त है। कसी भी सदाचारिणी स्त्री को पति तथा उसके अन्य कुटुम्बियों के साथ कैसा वर्तव करना चाहिये और वह अपने परिवार परं सन्तान आदि को किस तरह सुखी

८ सब तरह की हिन्दी पुस्तकों के मिलने का पता—

एवं हृष्टपुष्ट बना सकती है, हन सब बातों पर इसमें विस्तार के साथ विचार किया गया है। पुस्तक उपयोगी है। इसके प्रकाशक हैं श्रीयुत एस० बी० सिंह एण्ड कॉ० बनारस सिटी। सरस्वती १९२९ अप्रैल
नारी-धर्म-शिक्षा—लेखिका श्रीमती मनवता देवी तथा प्रकाशक एस० बी० सिंह कॉ० बनारस सिटी, पृष्ठ संख्या १५ ६। मूल्य १।)

श्रीमती जी के प्रतिभा का फल स्वरूप नारीधर्म-शिक्षा हमारे सामने है। यद्यपि यह पुस्तक सिर्फ १५० पृष्ठों की ही है पर स्त्रियोपयोगी ऐसा कोई प्रधान विषय नहीं जो इसमें न आया हो। बाल-शिक्षा, गृहकार्य, घरबालों के साथ वर्ताव, सन्तान-पालन, रोग चिकित्सा, व्यंजन बनाने की रीति, पतिसेवा आदि सभी विषयों पर बड़ी सूची के साथ प्रकाश ढाला गया है। पुस्तक इतने काम की है कि यदि मातायें व वहिने इसे एक बार आणोपान्त तक पढ़ने का कष्ट उठावेंगी तो वे अवश्य यही निष्कर्ष निकालेंगी कि प्रत्येक घर में इस पुस्तक की एक दो प्रति अवश्यमेव रहनी चाहिये। श्रीमती जी पहिली स्त्री-रत्न हैं जिन्होंने इस शैली की पुस्तक की रचना की है। इस पुस्तक को बनाकर आपने स्त्री-समाज का जो उपकार किया है वह अवर्णनीय है। इसे पूरी आशा है कि हिन्दी संसार अवश्य “नारी-धर्म-शिक्षा” का समुचित भादर करेगा।

फरवरी १९२९

धर्म और जातीयता—लेखक योगिराज भरविन्द, प्रकाशक एस० बी० सिंह एण्ड कॉ० बनारस सिटी। पृष्ठ संख्या १२८। मूल्य १।)

यह पुस्तक योगिराज श्री भरविन्द घोष की उत्कृष्ट रचनाओं में बड़ी ही अनुठी और नवीन रचना है। मातृ-भाषा हिन्दी का भण्डार भभी तरु ऐसे अद्भुत प्रभापूर्ण रत्न से शून्य था। हर्ष की बात है कि आज इस कमी की भी पूर्ति हो गई। इसके अनुवादक श्री देवनारायण द्विवेदी जी ने ऐसी पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद कर हिन्दी-साहित्य का बड़ा उपकार किया है। इस पुस्तक में दो खण्ड हैं, एक “धर्म” और दूसरा “जातीयता” भाषा सरल है। थोड़ी हिन्दी पढ़े-लिखे भी इसे भलीभाँति समझ सकते।

हैं। जहाँ तहाँ अर्थ सरल करने के लिये टिप्पणियाँ भी दी गई हैं। पुस्तक के आदि में योगिराज भरविन्द का सुन्दर चित्र पुस्तक की और भी शोभा बढ़ा रहा है। छपाई सफाई उत्तम है। मनोरमा—१९२९

ब्रह्मचर्य की महिमा—लेखक—श्री सूर्यबलीसिंह तथा प्रकाशक एस० बी० सिंह एण्ड को० बनारस सिटी।—पृष्ठ संख्या १५४ मूल्य १)

यह जीवन ब्रह्मचर्य पर ही स्थित है। ऐसे महत्वपूर्ण विषय पर जितनी पुस्तकें निकली जायें वा लेख लिखे जायें थोड़े हैं। इस विषय पर दो एक पुस्तकों अवश्य निकल चुकी हैं पर इसमें उन सभी से कुछ विशेषता अवश्य है। ब्रह्मचर्य के प्रत्येक पहलुओं पर काफी प्रकाश ढाला गया है। साथ ही ब्रह्मचर्य के अत्यन्त आवश्यक अङ्ग प्राणायाम, भासन, गाहूस्थ्य-जीवन विधि आदि को भी बड़ी सरलता के साथ समझाने का प्रयत्न किया है। इस पुस्तक द्वारा पाठक योगिक प्राणायाम भी सीख सकते हैं।

पुस्तक में ब्रह्मचर्च की महिमा, अष्टमैथुन, ब्रह्मचर्य की विधियाँ, संगीत बाल-शिक्षा, स्त्री-ब्रह्मचर्य, स्त्री पुरुष जीवन आदि विषयों को बड़ी खूबी के साथ समझाया है। पुस्तक, स्त्री, पुरुष, तथा विद्यार्थियों के लिये बड़ी ही उपयोगी है विशेषकर छात्रों को तो अवश्य इसकी एक-एक प्रति अपने पास रखनी चाहिये। छपाई सफाई उत्तम है।

मनोरमा—जनवरी १९२८ प्रयाग

ब्रह्मचर्य की महिमा—लेखक श्री सूर्यबलीसिंहजी, प्रकाशक एस० बी० सिंह एण्ड को० बनारस सिटी। मूल्य १)

यह पुस्तक ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचर्यतालम्बन के विषय पर अच्छा प्रकाश ढालती है। इसकी भाषा सरल और सुन्दर है और सबसे उदाहरणीय वात यह है कि ब्रह्मचर्य-पालन के लिए बहुत सी ध्यवहारिक बातें इसमें दी गयी हैं।

‘सेवा’ मार्च १९२९

१० सब तरह की हिन्दी पुस्तकों के मिलने का पता—

ब्रह्मचर्य की भाषिका

इस पुस्तक के लेखक हैं श्री० सूर्यवली सिंह और प्रकाशक हैं एस० बी० सिंह एण्ड को० बनारस सिटी। इसमें सब मिलाकर १६० पृष्ठ हैं और मूल्य इसका १) है।

इस पुस्तक में सात प्रकरण हैं। पहले दो प्रकरणों में ब्रह्मचर्य का महत्व बतलाया गया है, तीसरे और चौथे प्रकरणों में उन वातों के पालन करने के लिए कहा गया है, जिनसे ब्रह्मचर्य व्रत सध सकता है, पाँचवें और छठे प्रकरणों में वर्ण, आश्रम तथा संस्कार को लेकर ब्रह्मचर्य पर विचार किया गया है और ग्रहस्थाश्रम के समय कामदेव को किस प्रकार शान्त करना चाहिए, इसके भी उपाय बताये गये हैं और सातवें प्रकरण में ब्रह्मचर्य-संबंधी बहुत-सी फुटकर वातों का ज़िक्र किया है, जिसमें लेखक ने अमोघवीर्य, ऊर्ध्वरेता की परिभाषा, उपवास की आवश्यकता, खड़ाज पहनने, लंगोट बाँधने, सूर्य तपने तथा आसन आदि करने की उपयोगिता और प्राणायाम के महत्व, तथा प्रेम के मूल्य पर प्रकाश डाला है। पुस्तक शरीर को स्वस्थ और बलवान् बनाने में काफ़ी सहायक हो सकती है। इस पुस्तक में कोई नवीन वात नहीं मिलेगी। यह उन सब वातों का एक संबंध ही मात्र है, जो जहाँ तहाँ हमारे डिंडू-समाज में प्रचलित है। परन्तु जिस ग्रन्थशाली रूप में लेखक ने उन सब को इस पुस्तक में रखा है, उसके लिये वह प्रशंसा का पात्र है। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि जो वात लेखक ने लिखी है, उसकी पुष्टि में उसने प्रचीन तथा अर्धचीन ग्रन्थों तथा अनुभवी विद्वानों के उद्घारण भी दिये हैं। इस पुस्तक के पढ़ने से एक विचारवान् स्त्री या पुरुष यह वात आसानी से समझ सकता है कि ब्रह्मचर्य पालन से उसकी शारीरिक मानसिक तथा धार्मिक सब प्रकार की उन्नति हो सकती है और संसार में किसी तरह का कष्ट नहीं हो सकता है। हिन्दी में इस विषय पर कुछ और भी पुस्तकें लिखी गई हैं, जिनमें लाला भगवान्दीनजी की एक 'ब्रह्मचर्य की वैज्ञानिक भीमांसा' भी है। फिर भी यह पुस्तक भी अपना-

स्थान रखती है और लोगों को लाभ पहुँचाने में किसी तरह कम नहीं है। आजकल, हमारे पतन के समय, जब 'शक्ति पैदा करो' की आवाज़ देश के कोने कोने से आ रही है, ऐसी पुस्तक जनता के लिए अवश्य गुणकारी सिद्ध होगी। इस पुस्तक के पढ़ने के लिए हम 'भारत' के पाठकों से अनुरोध करते हैं।

भारत १९२९—कमला प्रसाद

हिन्दी की उत्तमोत्तम पुस्तकें

हमारे यहाँ हिन्दी अन्थरलाकर, गंगापुस्तकमाला, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, साहित्य-सेवक-कार्यालय, प्रकाशपुस्तकमाला, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, इण्डियन प्रेस, नवलकिशोर प्रेस, साहित्यसदन, लहेरियासराय, मै० श० गुप्त, इत्यादि तथा हिन्दी के अन्य सभी तरह की पुस्तकें-काव्य, नाटक, उपन्यास, जीवनचरित, इतिहास इत्यादि, उचित मूल्य पर मिलती हैं।

राष्ट्रीय और राजनीतिक

आन्तरराष्ट्रीय विधान	३।)	गांधी सिद्धान्त	॥)
अकालियोंका आदर्श सत्याग्रह॥)		गोखलेके २० व्याख्यान	१।)
अमेरिका कैसे स्वाधीन हुआ ॥)		चीनकी राज्यकांति	१॥।)
आसहयोग दर्शन	१।)	जगद्गुरु भारतवर्प	२)
अमेरिकाकी स्वाधीनता		जापानको राजनी०प्रगति ३।=)	
का इतिहास	२)	टालस्टायकी-आत्मकहानी ॥=)	
चरविन्द मन्दिरमें	॥।।)	टालस्टायके सिद्धान्त	१।।)
अंग्रेज जातिका इतिहास	२॥।)	ट्रांसवालमें भारतवासी	।॥।)
आप बीती-भाई परमानन्द १॥।)		तरुण भारत	१)
आयलेंडके गदरकी कहा० ॥=)		देशकी बात	१॥।)
इटलीके विधायक महाभाण २।)		देश दर्शन	२) ३)
कांग्रेस का इतिहास	॥।)	देशभक्त मेजिनीके लेख	२)
केनिया में हिन्दुस्तानी १॥।)		देशभक्तिकी पुकार	१)
खादीका इतिहास	॥=)	नागपुरकी कांग्रेस	॥॥।)

१२ सब तरह की हिन्दी पुस्तकों के मिलने का पता—

पंजाबका भीपण हत्याकांड १॥३॥	साम्यवाद ।=) ३)
पंजाबकी वेदना ॥)	सी० आर० दास ॥) ॥=) ३)
पं० मोतीलाल नेहरू ॥३॥	स्वतंत्रताके प्रेमी सिनकिर ।)
प्रजा के अधिकार ॥)	स्वराज्यकी माँग ३॥)
फीजीद्वीप में मेरे २१ वर्ष ॥)	स्वाधीनता २)
बीसवीं सदीका भारत ॥३॥	हिंद स्वराज ।—)
बोलशेविक रूस ।=)	हिन्दूजातिका स्वातंत्र्यप्रेम १)
बोलशेविज्ञ ॥१=)	नाटक और प्रहसन
भारत गीतांजलि ।—)	अज्ञातशत्रु १) १॥)
भारतभक्त ऐएहूँ ज २।)	अज्ञातवास ॥=), १)
भारतमाता का संदेश ॥)	उसपार १)
भारतमें दुर्भिक्ष २॥३॥	कर्वला १॥)
भारतीय चिन्तन ॥३=)	काठका उल्लङ्घ ॥)
भारतीय राजस्व ॥३=)	कामना १)
भारतीय राष्ट्र निर्माण ॥३=)	काशी विश्वनाथ ३॥)
भारतीय शासन ॥३=)	कृष्णकुमारी ३॥) १)
मनुष्यके अधिकार ।=)	कृष्णर्जुन युद्ध ॥६)
म० गांधी १), ४॥)	घोषावसन्त ०)
„ की गिरफ्तारी ॥=)	चौपटानन्द ०)
मेरे जेलके अनुभव ।=)	द्वन्द्रपति शिवाजी १)
राजनीतिशास्त्र २।=)	जयद्रथ वध ॥३=)
राजा और प्रजा १)	द्रौपदी स्वयंबर ३॥)
राष्ट्रीय आय व्यय शास्त्र ३।)	नाटकावली ३) ३॥)
खसकी राज्यकान्ति २॥)	नोकझोक १)
लखनऊ कांग्रेस में स्वराज्य ।)	पत्नी प्रताप ॥=)
वर्तमान एशिया २)	पद्मिनी ३॥)
चीरशेष सावरकर ॥=)	परम भक्त प्रह्लाद १)

परिवर्तन	१)	श्रवणकुमार	॥) ॥॥)
बुद्ध चरित्र	॥॥)	श्रीमती मंजरी	॥॥)
भक्त सूरदास	१)	श्रीराम लीला	॥=)
भारत दर्पण	१)	श्री कृष्णावतार	१)
भारत रमणी	॥॥=)	सटक सीताराम (प्रहसन) ।	
भारतवर्ष	॥॥)	सती अनुसूया	॥=)
महा अंधेर नगरी	।)	सम्राट् परीक्षित	१)
महात्मा ईसा	॥॥=), १=)	सत्य हरिश्चन्द्र ≡) ≡) ।=) ॥)	
महाभारत	॥=), ॥॥)	संपादक की दुम	।)
महाराणा प्रताप	॥)	सूम के घर धूम	।)
„ राजसिंह	॥॥)	स्वामिभक्ति	१)
मालती माधव	॥=), १)	स्कन्दगुप्त	२॥)
मुद्राराजस	॥=), ॥॥) १)	हरि ओ३म् तत्सत्	।)
मूर्ख मण्डली	॥॥), १)	थियेट्रिकल	
मेवाइपतन	॥॥=)	अलीबाबा	॥)
रामायण	।)	आजादी या मौत	॥)
राव घहादुर	॥॥), १)	कंजूस की खोपड़ी	॥)
लब्धधोधो	॥॥=)	कृष्णलीला	१)
वरमाला	॥॥)	खूबसूरत बला	॥)
वीर अभिमन्यु	॥॥), १॥)	गड़बड़धोटाला	॥=)
वैदिक कठोर दण्ड है या		पति भक्ति	॥)
शान्ति	॥॥=)	बिल्वमंगल	॥)
विवाह विज्ञापन	।)	भक्त सूरदास	॥॥)
शकुन्तला	॥॥) १) ॥)	म० कवीर	१).
शाहजहाँ	१)	मीराबाई	॥=)
शिव पार्वती	॥॥)	संसार चक्र	॥)
शिक्षा दान (प्रहसन)	।)	सिलवर किंग	॥)
		हिन्दू ल्ली	॥)

१४ सब तरह को हिन्दी पुस्तकों का मिलने का पता—

उपन्यास तथा गल्पें वंकिम बाबू की

आनन्द मठ) १)	ऐतिहासिक कहानियाँ	९)
कपाल कुण्डला	(=) २) ३)	उपाकाल	५।।) ६।।)
चन्द्रशेखर)	चंद्रभ्रान्त प्रेम)
देवां चौधरानी	(=) ३) २)	कथा कादिम्बनी)
वंकिम ग्रन्थावली	१ =)	कर्मपथ	२)
मृणालिनी	=; २)	कर्मफल	१।।)
मृणमयी	.	, „जैसी करनी वैसी भरनी॥).	
रजनी	=)	कर्तव्याघात	२।।)
राजसिंह	२)	कादम्बरी	॥) २॥)
राधारानी	३) ।=)	कुमुमजुमारी	१।)
विष्वाज्ञ	१।) १॥।) ३)	कोहेनूर	२) १॥)
सीताराम	१।) २।) १॥)	गल्पमाला ९ भाग	२२।।)
चौधेका चिट्ठा	=)	गंगा गोविंदसिंह	॥=) ॥)
लांक रहस्य	=) १।	गोरा	३) ४) १॥=)
वंकिम निवंधावली	=)	घर और बाहर	१।)
सामाजिक		चरित्रहीन	३।)
अधखिली कली	२॥)	चिन्नाधार	१)
अधःपतन	॥।)	चंद्र हसीनों के खदूत)
अन्नमूर्णा का मंदिर	१।)	वाकलेट	१)
अमरसिंह राठौर	१॥)	टाम काका की कुटिया	२॥, १॥)
अलिफ्लैला	३) १॥)	द्ववज वीचों	॥)
अरण्य वाला	१॥=)	तूलिका	१)
अवलाशोंपर अत्याचार	२॥)	दिल का कांटा	१)
आजादकथा २ भाग	४॥)	दो वहन	॥=)
आश्चर्य घटना	१॥)	देशी और विलायती	२॥)
आँख की किरकिरी	१॥)	दोज्जख की आग	१॥)

चन्द्रनिकुंज	१)	सम्राट् अशोक	२॥)१)
नाट्य कथामृत	१)	, चंद्रगुप्त	२॥)
यरिणीता	१)	सरस्वतीचन्द्र	२) १॥) ४)
यंडितजी	१॥)	सुप्रभात	१॥)
पवित्र पापी	३)	सेवासदन	२॥)
ग्राणघातक माला	॥=)	तिलसी और जासूसी	
प्रेर्मपूर्णिमा	२)	कुसुम कुमारी	१)
प्रेर्मप्रतिमा	२)	कुसुमलता २ भाग	२॥)
प्रेर्मप्रसून	१)	चन्द्रकान्ता	१॥)
प्रेर्माश्रम	३॥)	, संतति	७॥)
चलिदान	२)	जहर का प्याला	१)
बहता हुआ फूल	२॥)	गाढ़ी में मुर्दा	१)
भागवती	२)	जासूस की बुद्धि	१)
मिलनमन्दिर	२॥)	उच्च कोटि की पुस्तकें	
भिंव्यास की कथा	२॥)	(गोर्का कृत) माँ का हृदय	२)
यूधिका	॥)	भूपण ग्रन्थावली	२)
रक्तमण्डल ४ भाग	६)	आहारविज्ञान	२)
रत्नदीप	२)	आरोग्य मन्दिर	२)
रंगभूमि २ भाग	५)	भयंकर डकैती	१॥)
विमाता	२)	विनय पत्रिका	१॥)
विपक्त प्रेर्म	१)	कवितावली	१)
वीर अभिमन्यु ॥) ॥=) १)	१)	समाज की वेदोपर	१)
वीर दुर्गादास	२)	तुलसीकृत रामायण ॥) १) ३)	
शशांक	३)	सटीक ३) ३॥) ४॥) ६॥) ८)	
शशिप्रभा ४ भाग	१०)	श्रीमद्भागवतगीता ॥) १) १)	
सती महिमा	३)	गीतारहस्य ४॥)	
सप्त सरोज	१)	प्रेमसागर ३) १-२) २॥)	

१६ सब तरह की हिन्दी पुस्तकों के मिलने का पता—

आर्य-सामाजिक पुस्तकें

आर्य चिन्नावली	२॥)	विधवा-विवाह	२॥)
आर्य समाज क्या है?	।—)	शिवपुराण की आलोचना	१॥)
आर्य-पथिक (लेखराम)	१॥)	शुद्धि-शास्त्र	॥=)
आर्यभिविनय	।—), ॥=)	सत्यार्थप्रकाश (वै०पु०) ॥=), १)	
ऋग्वेदादि भाग्य-भूमिका	१॥=)	सत्योपदेशमाला	१)
कल्याण-मार्ग का पथिक	१॥)	संस्कार चंद्रिका	३॥)
चिन्नमय द्यानंद	१॥)	संस्कार प्रकाश	२॥)
जाति-निर्णय (स० आ०) १॥॥॥)		संस्कार विधि (वै० पु०)	।=)
भजनों की पुस्तकें	—)	वैदिक संध्या	—)
द्यानंद-प्रथावली	३॥), ४॥), ५॥)	प्राणयाम विधि	—)

वालकोपयोगी पुस्तकें

वैदिक प्रार्थना	॥=)	वाल-भारत	१॥)
श्रीगरेजी-शिद्धावली	१)	वाल-मनुस्मृति	॥=)
इतिहास की कहानियाँ	॥=)	वाल-रामायण	॥=)
खेल-कूद	।—)	वाल-ऋ-बोधिनी	॥)
खेल-तमाशा	।)	भाषा-पत्र-बोध	॥=)
पहेली-पुंज	।=)	रचना-प्रबोध	॥॥)
पहेली-युझौवल	१)	लड़कों की कहानियाँ	॥=))
पोत की माला	॥=)	सच्ची मनोहर कहानियाँ	॥=)
वाल कथा-कहानी प्रति भाग	।—)	समुद्र को सैर	॥॥=)
वाल-नीति-कथा	२॥)	हिंदी-खिलौना	॥=)
वाल-भागबत	१।)	हिंदी-व्याकरण	।)

पुस्तक मिलने का पता—

‘एस० बी० सिंह एण्ड को० वनारस सिटी।

श्री सीताराम प्रेस, काशी।



COLLECTION OF VARIOUS

- > HINDUISM SCRIPTURES
- > HINDU COMICS
- > AYURVEDA
- > MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server

